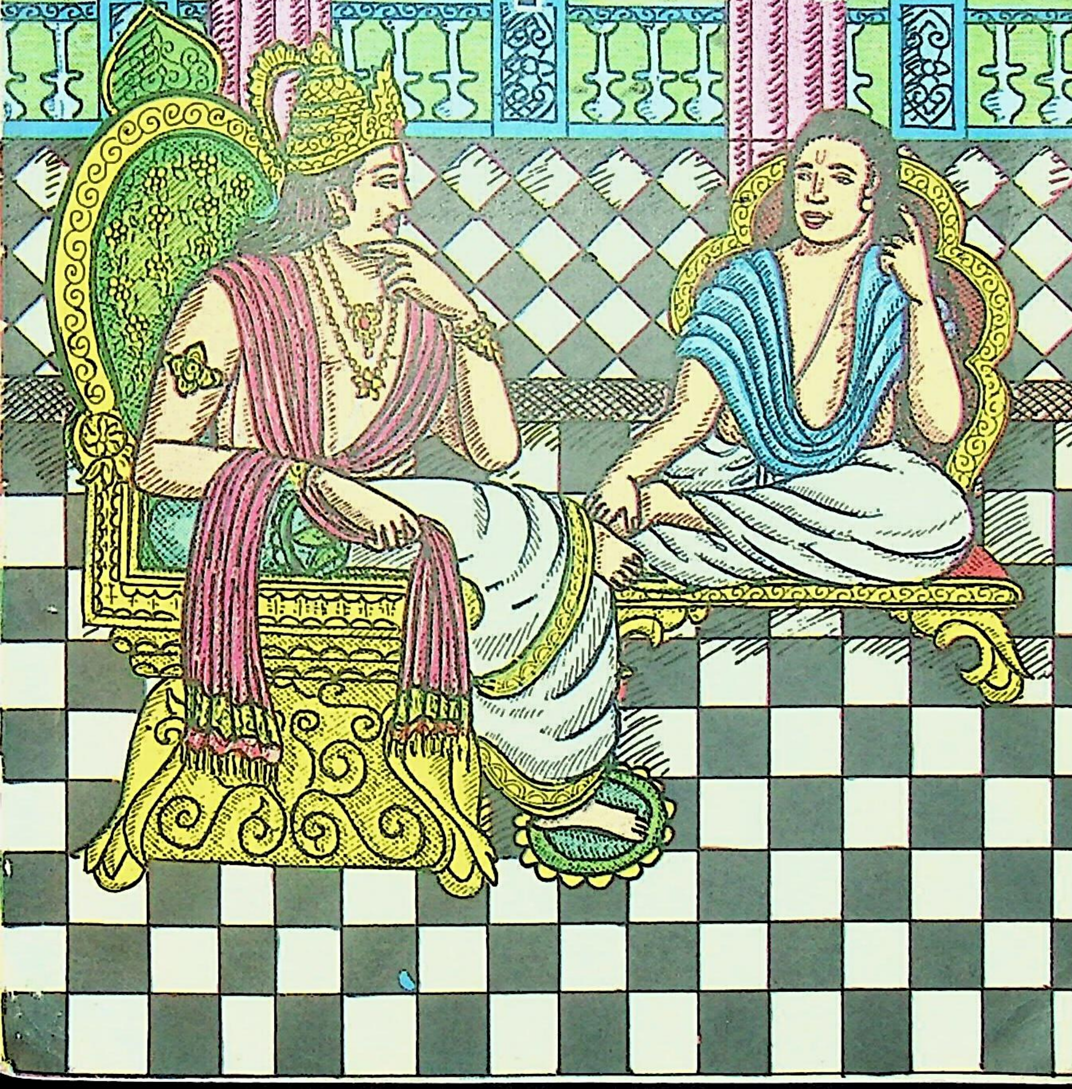
भोज और कालिदास



भोज और कालिदास

सम्भल (मुरादाबाद) निवासी
बाबू स्वरूपचन्द्रजी जैन लिखित

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

संस्करण : जनवरी २०१०, संवत् २०६६

मूल्य ५० रुपये मात्र।

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass Prop: Shri Venkateshwar Press, Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s.Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013

भूमिका

प्रायः भारतवर्ष में ऐसा कोई नगर अथवा ग्राम नहीं है कि जहां धाराधिपति महाराज भोज की अपूर्व उदारता, अद्‌भुत विद्वत्ता और अलौकिक गुणग्राहकता प्रसिद्ध न हो तथा उसी प्रकार महाराजा भोज की सभा के भूषण कवीन्द्रकुलतिलक कवि कालिदास की उज्ज्वल कीर्ति विस्तृत न हो। जिन्होंने यदि वेतालपञ्चविंशति, भोजप्रबन्ध प्रभृति छोटी-छोटी पुस्तकें भी देखी होंगी, वे भी महाराजा भोज और कवि कालिदास के नाम को अच्छी प्रकार से जानते होंगे।

यद्यपि विक्रम के समान एक नामवाले कितने ही कालिदास और कितने ही भोज हुए हैं, किन्तु इस पुस्तक में परमारवंशावतंस धाराधिपति वृद्ध भोज और भोज की सभा के मुख्य कविराज रघुवंश, कुमारसंभव और मेघदूत आदि ग्रन्थों के रचयिता कालिदास का संवाद लिखा गया है।

राजा भोज और कवि कालिदास की अपूर्व चातुर्यसम्पन्न अनेक कथा वार्तायें और समस्यापूर्तियां संसार में प्रसिद्ध हैं, किन्तु जिसमें उपरोक्त कथा और समस्यापूर्ति आदि का एक साथ संग्रह हो, ऐसी पुस्तक आज तक हिंदी में प्रकाशित नहीं हुई। इस अभाव को दूर करने के लिये प्रियवर बाबू स्वरूपचन्द्र* ने इस पुस्तक को लिखना आरम्भ किया था, किंतु दैव की कुटिल गति है उन्होंने अनुमानतः इसकी २०-२२ कलायें लिखी होगी कि वे दारुण व्याधि से ग्रस्त होकर परलोक प्रयाण कर गये।

इसमें वर्तमान साहित्य-लेखन के नियमानुसार कहीं-कहीं भाषा के दोष और अप्रचलित शब्दों के प्रयोग आदि के कई एक दोष आ गये थे, वे इस आवृत्ति में हमने विद्वानों की सम्मति से शुद्ध कर दिये हैं और जो श्लोक भी दृष्टिदोष के कारण अशुद्ध रह गये थे, वे भी शुद्ध कर दिये हैं।

---

*स्वरूपचन्द्र सौम्य, शांतस्वभाव, दृढ़ प्रतिज्ञ और असीम साहसी थे, उन्होंने थोड़ी सी अवस्था में बहुत से उत्तम काम किये थे, उनके लिखे और भी कितने ग्रंथ मेरे पास अधूरे पड़े हैं, वे अवकाश मिलने पर पूरे करके प्रकाशित किये जायँगे।

यद्यपि इसमें विशेष कर तो राजा भोज और कवि कालिदास का ही सवांद लिखा गया है, किन्तु कहीं-कहीं भोज की सभा के अन्य कवियों और विद्वानों का भी किया गया है।

इस पुस्तक के लिखने में गुर्जर भाषा की "भोजसुबोध रत्नमाला" "भोज अने कालिदास" एवं मेरुतुङ्गाचार्यप्रणीत "प्रबन्धचिन्तामणि" आदि से विशेष सहायता ली गई है।

इसमें अनेक प्रकार की कथारूपी कलाओं का संग्रह होने से इसका नाम "कला प्रकाश" भी है।

उपसंहार में वैश्यवंशावतंस परममाननीय श्रेष्ठिवर्य "श्रीवेंकटेश्वर" प्रेस के अधिपति सेठ खेमराजजी श्रीकृष्णदासजी को बारम्बार धन्यवाद है कि उन्होंने अपना बहुत सा धन खर्च करके इस पुस्तक को जगत्प्रसिद्ध अपने "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस में छपाकर प्रकाशित किया। सर्वाधिकार "श्रीवेंकटेश्वर" प्रेस बम्बई का ही है।

भवदीय आज्ञाकारी–

वैद्य शङ्करलाल जैन

आयुर्वेदोद्धारक-कार्यालय, मुरादाबाद, उ० प्र०

श्रीगणेशाय नमः

भोज और कालिदास

कला १

(राजा भोज का चरित्र)

पहले भारतवर्ष में महाप्रतापी, तेजस्वी, धीर, वीर, अत्यन्त पराक्रमी, सूर्य और चन्द्रवंशी सहस्रों राजा राज्य कर गये, पश्चात् अन्य देशीय राजाओं के द्वारा इस पर चढ़ाई करके अधिकार कर लेने पर यह देश अत्यन्त हीन अवस्था को प्राप्त होता गया,कला-कौशल और सब विद्याएँ नष्ट होती गयीं। सिकन्दर के और उसके बाद होनेवाले आक्रमणों ने प्रजा को अत्यन्त हीन दशा में पहुँचा दिया। देशी राजाओं में संगठन न होने से अन्य देश के राजा राज्य करते रहे। इसके बाद बार-बार अफगान, मुगल और तातार लोगों ने चढ़ाइयां कीं। उनकी चढ़ाइयों से देश की हीनता बढ़ती गयी। सन् १००१ से १०२४ तक गजनी के सुलतान मुहम्मद ने बारह बार चढ़ाई की, जिससे और भी अवस्था बिगड़ गयी, राजाओंको रात-दिन अपने जीने की चिन्ता सताने लगी। विद्या और कलाकौशल पर किसी ने ध्यान नहीं दिया; क्योंकि जहां राजा स्वयं ही नासमझ हो, वहां की प्रजा का कहना ही क्या? तत्पश्चात् बारहवीं शताब्दी में राजा भोज हुआ; वह स्वयं भी विद्वान् था, उसने विद्या और कलाओं के विकास के लिए खूब काम किया। अपनी सभा में देश-विदेश के विद्वान् और कवि बुलाकर रखे। उसने एक ऐसा नियम बनाया कि धारानगरी में कोई भी मूर्ख न रहने पाये, भले ही वह छोटा हो या बड़ा, स्त्री हो या पुरुष, प्रत्येक व्यक्ति विद्याभ्यास करे। उस समय तक प्रायः सभी मनुष्य मूर्ख थे, उनमें से भी बहुत से केवल अपने काम के लायक अक्षर ज्ञान भर रखते थे। राजा भोज ने सारी प्रजा को विद्याध्ययन करने की आज्ञा दी। भोज ने अनेक पाठशालाएँ खुलवायीं। उस समय राजा भोज विद्वत्ता में सर्वोपरि समझा जाता था। धारा नगरी इन्द्र की अमरावती नगरी के समान थी, जिससे अब विद्यार्जन की सबकी इच्छा बलवती हो उठी।

राजा भोज के विषय में इतनी वार्ता कहकर अब उसकी उत्पत्ति आरंभ करते हैं। महाराजाधिराज विक्रमादित्य परमार के वंश में सिंधुल नामक एक राजा था। वह उज्जयिनी नगरी में राज्य करता था। उसने अपने पूर्वजनों को पराजित हुआ देखकर स्वयं जय प्राप्त किया। वह राजा अपनी प्रजा का पालन उत्तम रीति से करता था। जिससे वह अत्यन्त सुखी था। केवल अपने पुत्र न होने का ही दुःख विशेष था। वृद्धावस्था हो गई थी, तो भी यह दुःख नहीं मिटा। परंतु प्रारब्ध तो बलवान् होती है, वृद्धावस्था में ही उसे पुत्र की प्राप्ति हुई। पुत्र-प्राप्ति की खुशी में राजा ने खूब दान-पुण्य किया और बन्दीजनों को छोड़ कर उन्हें यथेच्छ धन दिया। प्रजा ने भी बहुत दिनों तक आनन्दोत्सव मनाया। राजा ने राजज्योतिषियों को बुलाकर पुत्र की जन्मपत्री बनाने की आज्ञा दी। ज्योतिषियों ने गणित के द्वारा पुत्र का जन्मलग्न देख-देखकर राजा से कहा कि हमें गणित से यह विदित होता है कि कुमार की आयु अधिक है। यह बड़ा होने पर महायशस्वी होगा। इसके राज्य में कोई भी मनुष्य मूर्ख नहीं रहेगा। विद्या और यह कलाकौशल का अधिक प्रचार करेगा। यह चक्रवर्ती महाराजा कहलायेगा और सुखपूर्वक राज्य करेगा। परन्तु इसको बाल्यावस्था में एक दुःख भोगना पड़ेगा, ऐसा लिखा है। इस दुःख के भोगने के पश्चात् यह सुख से रहेगा। सुख-दुःख कर्मानुसार आते हैं, इस कारण इसका हर्ष-विषाद करना वृथा है। राशि से इसका नाम भकार के ऊपर आता है, इस कारण इसका नाम भोज रखिये, यह कहकर ज्योतिषी चुप हो गये।

राजा ने उनको दक्षिणा देकर बिदा किया 'जो कुछ होनहार है, वह अवश्य होगा' इस प्रकार विचारकर राजा नै धैर्य धारण किया।

राजकुमार भोज जब पांच वर्षका हुआ, तब सिंधुल राजा को संतोष हुआ। अब राजा अत्यंत वृद्ध हो गये थे और चिंता करने से चित्त में अत्यन्त उदासीनता छा गयी थी। उन्होंने संसार को त्यागने का विचार किया। पर उनके चित्त में यह विचार आया कि पुत्र के होने पर भाई मुञ्ज को राज्य देना भी योग्य नहीं है। और यदि भोज को राज्य दूँगा, तो मुञ्ज महाबलवान् है, वह राज्य छीन लेगा और कालान्तर में भोज को मार डालेगा क्योंकि कहा है कि-

"लोभःप्रतिष्ठा पापस्य प्रसूतिर्लोभ एव च । द्वेषक्रोधादिजनको लोभः पापस्य कारणम् ।।१।। लोभात्क्रोधः प्रभवति क्रोधाद्द्रोहः प्रवर्तते ।। द्रोहेण नरकं याति शास्त्रज्ञोऽपि विचक्षणः ।।२।। मातरं पितरं पुत्रं भ्रातरं वा सुहृत्तमम् लोभाविष्टो नरो हंति स्वामिनं वा सहोदरम् ।।३।।

अर्थात् लोभ से पाप की प्रतिष्ठा और उत्पत्ति होती है, क्रोध और द्वेष लोभ

से होते हैं, लोभ पाप का कारण (होता) है, लोभ से क्रोध समर्थ होता है और क्रोध से द्रोह बढ़ता है, शास्त्रज्ञ पुरुष को भी द्रोह से नरक की प्राप्ति होती है और लोभी मनुष्य माता, पिता, पुत्र, भाई मित्र, स्वामी तथा सगे भाई को भी लोभ के वशीभूत होकर मार डालता है।

अतएव भोज को राज्य दूंगा, तो लोभी मुञ्ज उसे अवश्य ही मार डालेगा और इसकी मृत्यु हो जाने से मेरे वंश का नाश हो जायेगा, इस कारण सबसे उत्तम तो यह बात है कि; मुञ्ज को राज देकर भोज को उसके हाथ में सौंप दूं, जिससे भोज पूर्ण आयु होने पर अपना राज्य ले सके। ऐसा विचार कर राजा ने अपने प्रधानमंत्री बुद्धिसागर को बुलाकर अपने मन की बात कही। मंत्री ने भी इसी विचार का समर्थन किया। राजा ने अपने भाई मुञ्ज को बुलाकर राज्य का समस्त भार उसको सौंप दिया और बालक भोज को उसके हाथ में देकर राजा ने कहा कि,भाई मुञ्ज, मेरा पुत्र भोज अभी बहुत छोटा है इस कारण जब यह बड़ा हो जाये, तब इसका यह राज्य इसको सौंप देना और तुम अपने ग्राम सँभाल लेना।

मुञ्ज ने राजा के इस कथन को स्वीकार कर लिया, तत्पश्चात् राजा ने आत्मध्यान कर स्वर्ग को प्रयाण किया। राजा की मृत्यु से राजभवन में शोक छा गया। राजशव का अग्निसंस्कार कर, लोग अपने-अपने घर आये। राजा की सभी क्रियाओं से निवृत्त होने के बाद मुञ्ज को बड़े समारोह के साथ राजसिंहासन पर बैठाया गया। राजा मुञ्ज बड़ा लोभी और स्वार्थी था। जब उसको अनायास ही राज्य मिल गया तब उसने अपनी इच्छा के अनुसार लोगों को ढूँढा और जिन कार्यकर्त्ताओं को अपने प्रयोजन के अनुकूल समझा, उनको बाकी रखा और को निकालकर उनके स्थान में नवीन कार्यकर्त्ता नियुक्त किये। जब पुराने कार्यकर्ता पृथक् हुए और नये नियुक्त हुए तब पहले तो कुछ हलचल हुई, कुछ समय के पश्चात् अपने आप शांत हो गयी।

नवीन कर्मचारी और अधिकारी लोग इच्छानुसार प्रजा को लूटने लगे। जिस प्रकार चित्त में आया उसी प्रकार दुःख देने लगे। राजा तो प्रजा की पुकार कुछ सुनता ही नहीं था। इस प्रकार कुछ समय व्यतीत हुआ, तदनन्तर भोज जब सात वर्ष का हुआ, तब मुञ्ज ने उसको विद्याभ्यास कराने कां निश्चय किया। उसके निमित्त एक पृथक् पाठशाला स्थापित की और उसमें कई एक विद्वान् नियत किये। भोज का यज्ञोपवीत-संस्कार कराकर उसे प्रत्येक विद्या प्राप्त कराने की आज्ञा दी। यद्यपि भोज की अल्प अवस्था थी तो भी वह विद्याध्ययन में विशेष ध्यान रखता था, उसके पाठक भी उसका चातुर्य और उत्तम आचरण देखकर उससे अधिक प्रेम करते थे, गुरु जो कुछ भोज को

पढ़ाते, उसे वह प्रसन्नतापूर्वक याद कर लेता था। थोड़े समय में वह अनेक प्रकार की विद्यायें, कला मंत्र, तन्त्र, आदि विषयों में पारंगत हो गया। एक दिन राजा मुञ्ज पाठशाला देखने को आया। उस समय युवराज भोज की अवस्था बारह-तेरह वर्ष की थी। मुञ्ज ने भोज को प्रत्येक विषय में चतुर देखा। भोज के अपूर्व चातुर्य को देखकर मुञ्ज के मन में विचार पैदा हुआ कि, जब भोज बारह-तेरह वर्ष की अवस्था में इतना चतुर है, तो कुछ बड़ा होने पर यह मुझसे अपना राज्य अवश्य छीन लेगा, इसलिए अभी से इसका उपाय करना चाहिये। लोकापवाद के भय से डरना ठीक नहीं, जो कार्य मैं अभी करूंगा वह ठीक होगा, नहीं तो पीछे पश्चाताप ही करना पड़ेगा। जब यह छोटा है, तब तो कुछ भी नहीं, परन्तु जब यह बड़ा हो जायेगा, तब कठिन होगा।

इस बात का विचार करते-करते मुञ्ज की भूख और नींद बिल्कुल जाती रही। फिर एक दिन उसने निश्चय कर लिया और वत्सराज नामक अपने एक मन्त्री को एकान्त में बुलाकर सब बात कही कि 'हे मंत्रिवर्य! मेरे सामने एक घोर संकट उपस्थित हो गया है, हमारे दुःख के भागी तुम्हीं हो, इस कारण निवारण भी तुम्हीं कर सकते हो, श्रेष्ठ मित्र की परीक्षा दुःख में ही होती है। उसके निवारण के लिए तुम एक काम करो कि भोज को रात के समय रथ में बैठाकर वन में ले जाओ और वहाँ उसे मारकर उसका मस्तक काटकर ले आओ। इस काम के बदले में तुम्हें बहुत से गांव आदि दूंगा। वत्सराज यह बात सुनकर व्याकुल हो उठा, क्या उत्तर दे यह भी उसे नहीं सूझ रहा था, परन्तु कुछ शांत होकर हाथ जोड़कर वह बोला कि 'हे महाराज! कुमार भोज तो अभी बालक है न उसके पास धन है और न सेना। सिंधुल राजा उसे आपके हाथों में सौंप गये हैं। अतएव वह कुमार आपको पिता की तरह मानता है और आपकी आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं करता है, तो फिर ऐसे आज्ञाकारी सुपुत्र को मारने से क्या लाभ? ऐसा काम करने से पहले अच्छी तरह से विचार कर लेना उत्तम है। बाद में पश्चाताप करने से क्या लाभ? देखिये, एक राजा के पुत्र ने साहस करके अपने तोते को मार डाला था और बाद में उसने इतना पश्चात्ताप किया कि आत्मघात करने तक को तैयार हो गया। यह बात क्या आपने नहीं सुनी? मुञ्ज ने कहा कि यह बात तो मैंने नहीं सुनी, तुम सुनाओ।

वत्सराज ने कहा—नहीं सुनी तो सुनो—'एक राजा का पुत्र एक दिन अपने मित्र प्रधान के पुत्र को साथ लेकर शिकार के लिये वन में गया। दोपहर का समय हो जाने से राजकुमार को प्यास लगी। राजकुमार के लिये जल लेने प्रधान का पुत्र गया। एक वृक्ष की छाया में राजकुमार जीनपोश बिछाकर बैठ

गया। राजकुमार ने एक तोता पाल रखा था, वह तोता सीखे हुए अपने मधुर शब्दों से लोगों का मनोरंजन करता था। इसलिए राजकुमार जहां जाता, उसे अवश्य साथ ले जाता। उस दिन भी वह तोता उसके साथ था। प्रधानपुत्र, जो पानी लेने गया था, उसे पास में जल न मिलने के कारण बहुत दूर जाना पड़ा। इधर राजकुमार प्यास से अत्यन्त व्याकुल होकर इधर-उधर देखने लगा, उसने देखा कि उस बड़ के वृक्ष से पानी की बूँदे गिर रही हैं। राजकुमारके पास एक प्याला था, उसे उसने बड़ के नीचे रख दिया। जब वह प्याला भर गया, तब राजकुमार उसे उठाकर पीने लगा, तोते ने झपटकर प्याला उसके हाथ से गिरा दिया। राजाकुमार ने प्यास की असह्य पीड़ा से अत्यंत क्रोधातुर हो तोते की गर्दन मरोड़ दी और दूसरी बार प्याला वृक्ष के नीचे रखकर भरना चाहा। इतने में ही प्रधानपुत्र जल लेकर आ पहुँचा। राजकुमार जल पीकर शाँत हुआ। प्रधानपुत्र ने तोता न देखकर पूछा कि तोता कहां गया? तो राजकुमार ने तोते की पूरी घटना कह सुनायी। उसे सुनकर प्रधान का पुत्र बोला कि राजकुमार तुमने यह क्या किया, भला इस वन में बड़ के ऊपर पानी कहां से आया? इस समय वर्षाऋतु भी तो नहीं है। इस वृक्ष के ऊपर क्या है? यह देखना चाहिए।

इतना कहकर प्रधान का पुत्र वृक्ष पर चढ़ गया और उस पर एक बहुत बड़े मरे हुए सर्प को देखा; उसका रक्त पानी की तरह नीचे गिर रहा था। उसे देखकर प्रधान का पुत्र नीचे आया और देखी हुई सब बात राजकुमार से कही, प्रधान के पुत्र की बात सुनकर राजकुमार अपने किये हुए कार्य पर बहुत ही पछताने लगा। यदि राजकुमार ऊपर से गिरा हुआ जल पी लेता, तो निश्चय ही उसकी मृत्यु हो जाती। राजकुमार ने शोक-विह्वल होकर पत्थर से अपना सिर फोड़ कर मर जाना चाहा, परन्तु प्रधान के पुत्र ने उसे ऐसा नहीं करने दिया। समझा बुझाकर वह उसे घर ले आया। अतएव महाराज! जो भी काम करिये, विचारपूर्वक करिये, आगे-पीछे का सभी तरह का विचार कर लेना चाहिये। प्रजा का लगाव मृत्युगत महाराज सिंधुल और कुमार भोज की ओर अधिक है, यदि आप भोज को मरवा डालेंगे तो प्रजा आपका मुकाबला करेगी। आपके निकाले हुए कार्यकर्त्ता भी प्रजा का साथ देंगे। अतः प्रजा तथा सेना बिगड़ जाएगी, तब आप क्या करेंगे? उस समय आपका बचना भी कठिन हो जाएगा।

वत्सराज की बातें सुनकर मुञ्ज क्रोधित हो उठा और उच्च स्वर से कहने लगा कि सेवक को स्वामी के साथ किस प्रकार बर्ताव करना चाहिए, तू यह नहीं जानता? तुझको तो मेरे अनुकूल होना चाहिए, परंतु तू तो मेरा गुरु

बनकर मुझे शिक्षा दे रहा है।

तेरे मन की बात मैं अब अच्छी तरह जान गया, भोज के साथ तू गुप्त रूप से मित्रता रखता है, अब उसके साथ तेरी भी व्यवस्था करनी पड़ेगी।

मुञ्ज के यह वचन सुनकर वत्सराज चलने लगा और सोचा कि इस मूर्ख को जितना समझाऊंगा उतना ही अधिक यह जल में डूबेगा। इसके हित की बात कहूँगा, कठोर लगेंगी। आजकल संसार में धर्म नहीं रहा, इस कारण इस समय तो जो यह कहे उसी में हां में हां ही मिलानी चाहिए, कहा भी है कि "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" । इसका जब काल ही आ गया है तो किसकी सामर्थ्य है कि उसे रोक सके? पश्चात् वह हाथ जोड़कर बोला कि हे महाराज! अज्ञानवश मैंने जो कुछ अपशब्द आपको कह दिये हों उसके लिए क्षमा कीजिये। मैंने जो कहा है, वह बिना विचारे कहा है। आप आज्ञा करें तो भोज का तो क्या अपना मस्तक भी अपने हाथ से काटकर आपके आगे रख दूँ।

मुञ्ज उसके यह वचन सुनकर प्रसन्न मन हो बोले कि तेरा अपराध मैं क्षमा करता हूँ, तेरे विषय में अब मुझको कुछ संशय नहीं है, किन्तु यह काम आज ही करना चाहिये। वत्सराज ने कहा कि बहुत अच्छा महाराज! इस प्रकार कहकर वत्सराज चल दिया। रथ में बैठकर पाठशाले में गया और भोज को वह हिकारत से बुलाया, भोज को इस प्रकार बुलाते देख गुरुजी को आश्चर्य हुआ। भोज ने भी भीतर सुना और बाहर आकर बोला तू मेरे पितृभ्राता (चाचा) का सेवक होकर मुझे तुच्छता से बुलाता है। वत्सराज ने बताया कि मुझे राजा साहब की आज्ञा हुई है। यह कहकर जबर्दस्ती भोज को पकड़कर रथ में बिठा कर चल दिया। रथ में बैठे भोज ने आपत्ति उठायी। तब वत्सराज ने उसे डराने के लिये तलवार निकाली। भोज शस्त्र के बिना लाचार था। मार्ग में जिन्होंने उसे देखा, वे चिल्लाये, परन्तु वत्सराज ने किसी की भी न सुनकर तेजी से रथ को भगा दिया।

वत्सराज भोज को मारने के लिए ले जा रहा है, यह बात सम्पूर्ण नगर में फैल गई और जब यह बात राजभवन में पहुँची, तो सुनते ही माता हाहाकार करने लगी। और विलाप कर-करके कहने लगी—हे पुत्र! इस अल्प अवस्था में तेरी यह दशा, अरे पापी मुञ्ज तुझे क्या सूझा है? अरे तू इसके पिता का भाई नहीं पहले जन्म का शत्रु है। अरे तू पिता का भाई होकर राज्य के लोभ में इसको इस निर्दयता से मारना चाहता है' भोज की माता अनेक प्रकार से विलाप करने लगी। राजभवन में छोटे-बड़े सब रोने लगे, शोक के कारण सबने अन्न-जल त्याग दिया, प्रजा में कोलाहल मच गया, उस दिन किसी ने अपने

घर में दीपक तक भी नहीं जलाया, परंतु इस कोलाहल का राजा मुञ्ज पर कुछ भी प्रभाव न हुआ।

अब वत्सराज ने भोज को ले जाकर वहां क्या किया, उसे देखना चाहिए, जहां प्राणी नहीं केवल वन ही प्राणियों का भयंकर शब्द सुननेवाला है, ऐसे भयंकर वन में जाकर, बालक भोज प्रथम तो भयभीत हुआ, परन्तु धीरे-धीरे कुछ धीरज धारण किया। रथ से पहले वत्सराज उतरा और बाद में भोज को उतारा। हाथ में नंगी तलवार लेकर वत्सराज मन्त्री बोला कि'हे भोज! तेरे पिता के भ्राता मुञ्ज ने इतनी अवस्था में ही तेरी ऐसी चतुरता देखकर लोभ से तेरे मारने की मुझे आज्ञा दी है, इस कारण अब तुम मरने के लिए तैयार हो जाओ।'

मन्त्री के ये शब्द सुनकर भोज बोला–अरे मन्त्री वत्सराज! यदि मेरी मृत्यु अभी है तो वह टल नहीं सकती और यदि नहीं है तो मैं मर नहीं सकता। मेरे प्रारब्ध में यदि इसी प्रकार मृत्यु होनी लिखी है तो इसमें तेरा किंचित भी अपराध नहीं, तू राजसेवक है, सेवक उसका नाम है जो स्वामी की हृदय से आज्ञा माने और सेवा करे। लंकापति रावण जो अधिक बलवान् था उसे नष्ट करने के लिये ही श्रीरामचन्द्रजी ने वनवास स्वीकार किया और रावण सीताजी को हरकर ले गया; इस बहाने से रावण राम के हाथ से नष्ट हुआ। यदि मेरी मृत्यु इसी बहाने है तो टल नहीं सकती, इसका हर्ष-शोक करना मिथ्या है। राजा की आज्ञा का पालन तुम अवश्य करो, परंतु मैं मरते समय एक पत्र लिखता हूँ तुम उसको मेरे पिता के भाई को दे देना।

मंत्री ने उसके पत्र को ले जाना स्वीकार कर लिया, अतएव भोज पत्र लिखने का विचार करने लगा, पर वन में पत्र लिखने का सामान कहां से लाया जाये?

भोज के बायें हाथ में छह अंगुलियां थीं, उनमें छठी अंगुली जो बेकार थी, उसको छुरी से छेद कर उसके रक्त से बड़ के पत्ते के ऊपर उसने एक श्लोक लिखा। वत्सराज ने वह श्लोक पढ़ा और उसे पढ़ते ही उसके हाथ से खड्ग गिर पड़ा। भोज के सामने हाथ जोड़कर उसने कहा–हे महाराज! तुम्हारी यह विद्वत्ता देखकर तुम्हें मारने के लिये मेरा हाथ नहीं उठ सकता, मुझे तो एक दिन मरना ही होगा इस कारण हे धर्मराज! तुम्हारी मृत्यु के बदले मैं अपने प्राण दे दूंगा। इतना कहकर वह भोज के चरणों में गिर कर बोला कि मुझे धिक्कार है मुट्ठी-भर अन्न के लिये एक ऐसे सज्जन और विद्वान् राजा का वध करने के लिये उसे इस वन में ले आया। मंत्री ने बालक भोज से कहा-अब मेरे घर को चलो। रात का समय है, अंधकार में कोई देखेगा भी नहीं, अपने घर में एकान्त स्थान में

तुमको भली प्रकार रक्खूंगा। भोज ने कहा-हे मंत्रिराज! तुम हर्षशोक कुछ भी मत करो मेरे प्रारब्ध में ऐसा ही लिखा है।

वत्सराज ने कुछ भी उत्तर न देकर भोज को फिर रथ में बैठाया और गुप्त रूपसे अपने घर ले आया और एकान्त में उसे रखा। इस बात की अपने घर वालों को भी खबर नहीं की। जब आयु शेष होती है तो मनुष्य व्याघ्र के मुख से भी बच जाता है, भोज की छठी अंगुली अनिष्ट का कारण थी, सो भोजने काट डाली, उसका अनिष्ट दूर हो गया। इस समय तो भोज बच गया, परन्तु मंत्री के चित्त में भय था कदाचित् भोज की बात खुल जाये तो मैं मारा जाऊंगा; क्योंकि राजा ने भोज का मस्तक मांगा था। अब भोज का कटा हुआ मस्तक राजा को किस प्रकार दिखाऊँ? मंत्री इस विचार में पड़ा था कि उसे कुछ समय के पश्चात् एक युक्ति सोची। धारानगरी में एक अत्यन्त चतुर शिल्पकार रहता था, वह शिल्पकार प्रत्येक मनुष्य की साक्षात् वैसी ही मूर्त्ति पत्थर अथवा मिट्टी की बना सकता था। मंत्री ने उसके पास जाकर भोज के मस्तक के सदृश मिट्टी का मस्तक उसी रात्रि में ऐसा बनवाया कि प्रत्येक मनुष्य देखकर तत्काल कह दे कि यह भोज का ही मस्तक है, पश्चात् बकरे के रक्त में मस्तक को भिगोकर उसे मुञ्ज के पास ले गया, मुञ्ज ने उसे भोज का मस्तक जानकर मंत्री से कहा इसको दूर ले जाओ। मंत्री ने वहां से मस्तक ले जाकर तोड़ डाला। सभा में मुञ्ज ने भोज के मरने की सूचना देकर गहरा दुख व्यक्त किया। सभा के लोग भी दुःखित हुए। भोज की मृत्यु के कारण सभा विसर्जित हो गयी। केवल राजा और मंत्री ही रह गये। तब राजा ने पूछा-वत्सराज! भोज ने मरते समय मेरे लिए कुछ कहा था? इसके उत्तर में मन्त्री ने भोज का लिखा हुआ पत्र राजा के हाथ में दिया, मंत्री को अकेला छोड़ राजा एकान्त स्थान में निश्चिंत होकर उसे पढ़ने बैठा। पत्र में उसने पढ़ा कि-

"मांधाता च महीपतिः कृतयुगालंकारभूतो गतः
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते!
नैकेनापि समं गता वसुमती नूनं त्वया यास्यति ।।१।।"

अर्थात्-सत्युग में इस पृथ्वी पर महाराजा मांधाता हुए वे भी इस पृथ्वी को त्यागकर चले गये और समुद्र में सेतु (पुल) बांधने वाले तथा दशानन (रावण) का अन्त करने वाले श्रीरामचन्द्रजी कहां हैं? और ऐसे ही युधिष्ठिर आदि अनेक राजा हुए अर्थात् ये सब परलोक को चले गये, परन्तु यह पृथ्वी किसी के साथ नहीं गयी, किन्तु जान पड़ता है कि, यह आपके साथ अवश्य जायेगी।।१।।

इसको सुनते ही राजामुञ्ज मूर्छित होकर गिर पड़ा। कुछ समय बाद जब वह होश में आया तब हाय भोज! हाय भोज! ऐसे शब्द उसके मुख से निकलने लगे और हृदय विदारक क्रन्दन करने लगा। भोज कैसा और कितना चतुर था यह मैंने अभी जाना है। वह अनेक प्रकार से पश्चात्ताप करने लगा। मंत्री राजसेवक उसको समझाते थे, परन्तु उसकी समझ में कुछ भी नहीं आता था, भोज को याद करते ही लोट-पोट हो जाता। उसने अन्न-जल भी त्याग दिया। इस प्रकार जब तीन दिन बिना भोजन के बीत गये। तब मंत्री को लगा कि, अब वह भोज के वियोग से अपना शरीर अवश्य त्याग देगा, तो उसने एक उपाय सोचा और समय पाकर हाथ जोड़कर दुःखी राजा से कहा-महाराज! आज प्रातःकाल एक योगी से मेरा वार्तालाप हुआ है। वह योगी अद्‌भुत पराक्रमवान् ज्ञात होता है। वह योगिराज मृतक मनुष्य को भी जीवित कर सकता है, इससे उसके पास भोज की बात करके भोज को जीवित कराने का प्रयत्न कराऊं। यदि आप आज्ञा दें तो ऐसा करुं। मंत्री के ये वचन सुनकर राजा को कुछ धीरज बंधा। उसने मंत्री को यह कार्य कराने की आज्ञा दी। मंत्री ने राजबाग में मंडप तैयार कराया, बीच में अग्नि का कुंड बनाया, वत्सराज ने प्रधान बुद्धिसागर को पहले ही समझा रखा था, उसी प्रकार बुद्धिसागर को योगी का वेष धारण कराकर बाग में बैठा दिया, हवन करने की सब सामग्री मँगाई, हवन का समय रात्रि को रखा। रात्रि होने पर एक और राजा को बिठाया और उसके आगे एक चक्र बना रखा था, उसे देखने को राजा से कहा भोज को वहां छिपा रखा था, योगिराज ने अब हवन करना आरंभ किया, हवन में जब पहले से ही बहुत धुआँ निकलने लगा तब झट भोज को दृष्टिगोचर कर दिया, परन्तु उसके पहले ही योगिराज अपने आप गायब हो गया, जब होम का धुआँ निकल गया, तब राजा ने तुरन्त योगिराज को पूछा, परन्तु मंत्री ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की। कोई भी योगिराज के बारे में बता नहीं सका। भोज को वस्त्रभूषण पहराकर राजा राजमंदिर में ले आया, दूसरे दिन भोज के जीवित होने की खबर सम्पूर्ण नगर में फैल गयी और लोगों ने हर्षोत्सव मनाया।मुञ्ज संसारसे विरक्त हो गये और भोज का राज्याभिषेक किया, अपनी स्त्री आदि को त्याग कर वन में चले गये और तपकर मोक्ष प्राप्त किया, भोज ने जिस प्रकार से राज्य किया उसे आप आगे पढ़कर देखिये।

कला २
(कालिदास का चरित्र)

बंगदेश में सत्यवान् नामक एक सत्यवादी राजा राज्य करता था, चंपककलिका नाम की उसकी एक पुत्री थी। राजा के मुख्य मंत्री का चूड़ामणि नामक एक पुत्र था; राजकन्या और चूड़ामणि में घनिष्ठ मित्रता थी। वे दोनों बाल्यावस्था में एक ही स्थान में खेला करते थे। एक दिन बाल्यावस्था में ही चूड़ामणि ने राजकन्या से कहा कि हे चंपककलिके! तू मेरी स्त्री होगी? मेरी स्त्री होने की तेरी इच्छा हो तो राजा जब तेरा विवाह करने को कहें, तब मुझसे विवाह करने को उनसे कहना।

यह सुनकर राजकन्या किंचित् क्रोधित होकर बोली-हे चूड़ामणि तू प्रधान का पुत्र हमारा सेवक होकर मेरे साथ विवाह करना चाहता है? क्या मुझे कोई राजकुमार नहीं मिलेगा? यदि राजकुमार मेरे योग्य नहीं मिलेगा, तो किसी दूसरे पुरुष के साथ मैं कदापि विवाह नहीं करूंगी, यह तू निश्चय ही जान ले।

राजकन्या के ये वाक्य सुन कर प्रधान के पुत्र ने क्रोधित होकर कहा कि-हे राजकन्या! सुन, जिस समय राजाजी तेरे लिये वर ढूंढ़ने की इच्छा करेंगे, उस समय वे मेरे पिता ही से कहेंगे, तब यह कार्य मैं अपने हाथ ले लूंगा और तेरे लिये मूर्ख और दरिद्री वर ढूंढ़कर लाऊंगा, फिर तू क्या करेगी? यह सुन राजकन्या बोली-हे चूड़ामणि! यह तेरे अथवा तेरे पिता के आधीन नहीं है, यह तो केवल कर्म के आधीन है, जैसा मुझे वर मिलेगा, उसमें तू कुछ नहीं कर सकता।

राजकन्याके ये शब्द सुनकर वह मन ही मन संताप में भरकर वहां से चला गया। कुछ वर्ष बीत जाने पर राजकन्या और प्रधान का पुत्र बड़े हो गये। राजकन्या यह बात बालपन के कारण भूल गयी, परन्तु प्रधान के पुत्र ने मन में गुप्त रखी थी। चम्पककलिका को विवाह योग्य देखकर राजा ने उसका विवाह करने का विचार किया। पश्चात् राजा ने प्रधान से कहा-कन्या चम्पककलिका अब बड़ी हो गयी है। इसके लिए योग्य वर ढूंढ़ना चाहिये। यह कार्य मैं सौंपता हूं तुम इसके लिए कोई योग्य राजकुमार ढूंढ़ लाओ।

प्रधान अपने घर गया। राजकन्या के विवाह की बात उसने अपने पुत्र से कही। उसने अपनी पहली बात याद करके पिता से कहा-पिताजी वृद्ध होने के कारण मार्ग में आपको कष्ट होगा। शायद दूर भी जाना पड़े और उस समय यहां राज्य में कोई संकट पैदा हो जाये, तो आपके बिना कौन उसका निवारण

करेगा? इस कारण प्रथम राज्यकार्य सँभालकर पीछे अन्य कार्य करना चाहिये। यह कार्य तो मेरे योग्य है, मुझे आज्ञा मिले तो मैं जाऊँ।

पुत्र की बात सुनकर प्रधान को बड़ी प्रसन्नता हुई, परन्तु राजा की आज्ञा के बिना उसे भेज नहीं सकता था-वह राजा की आज्ञा लेने को गया। राजा ने प्रधान की बात सुनकर कहा-हे प्रधान! आपका बेटा इस कार्य को कर सके, तो इससे उत्तम और क्या है। चम्पककलिका से तुम्हारे पुत्र की गहरी मित्रता थी। वे परस्पर बहन भाई के सदृश रहते थे, इस कारण वह कन्या के योग्य वर ढ़ंढ़कर तो लायेगा ही, उसे जाने दो।

राजा के यह वचन सुन कर प्रधान हर्षित हुआ, पुत्र के यात्रा के लिए सब सामग्री तैयार करायी, साथ में कुछ आदमी और धन देकर बिदा किया। प्रधान का पुत्र वर ढूंढने निकला, राजकन्या को चूड़ामणि के जाने के बाद में खबर मिली। परन्तु पहली बीत गयी बात का उसे ध्यान भी नहीं था। चूड़ामणि अनेक देश-देशान्तरों में फिरा,परन्तु जैसा वर उसको चाहिये था, वैसा कहीं नहीं मिला। एक दिन एक जंगल से गुजरते समय उसने एक लड़के को एक वृक्ष की शाखा पर बैठा देखा। वह शाखा पीछे से हिलती थी। वह वहां क्या कर रहा है, यह पूछने के लिये उसने अपनी पालकी रोकी और उसके समीप जाकर उससे पूछा अरे भाई इस शाखा के टूटने पर तू नीचे गिर जायेगा, इसका भी कुछ विचार किया?

उस लड़के ने उत्तर दिया-सेठ साहब! आप जो कहते हैं, सत्य है, परन्तु मैं इस वृक्ष पर चढ़ने को तो चढ़ गया, किन्तु अब नीचे उतरना नहीं आता इसलिये इसे हिला रहा हूँ, जब यह टूटेगी तो मैं भी इसके साथ नीचे चला जाऊँगा।

उस लड़के की बात सुनकर चूड़ामणि ने सोचा निश्चय ही यह बालक देखने में सुन्दर, बोलने में चतुर होने पर भी मूर्ख है। मैंने अनेक मूर्ख देखे हैं, परंतु इसके जैसा एक भी नहीं देखा। राजकन्या के योग्य यही वर है। फिर उसने आदमियों से कहा कि, इस लड़के को नीचे उतारो। उन्होंने उसे वृक्ष से नीचे उतारा। जाति आदि पूछने के उद्देश्य से कहा-तू किसका पुत्र है और क्या कार्य करता है? लड़के ने विनम्रता से उत्तर दिया कि-मैं ब्राह्मण का पुत्र हूँ, मुझे लिखना-पढ़ना नहीं आता, मेरे माता-पिता मुझे बचपन में छोड़कर चले गये और अब पास के ग्राम की गाय-भैंसें चराकर मैं अपना पेट भरता हूँ।

चूड़ामणि ने कहा-हमारे राजा की कन्या के साथ विवाह करने की तेरी इच्छा हो तो मेरे साथ चल। लड़के ने स्वीकार कर लिया और चल दिया। कहां वह और कहां राजा की पुत्री, इसका उसने कुछ भी विचार नहीं किया। फिर

उसे नदी में स्नान कराकर अपने साथ लाये हुए वस्त्र और आभूषण आदि पहनाकर पालकी में बैठाकर प्रधान पुत्र धूमधाम से नगर की ओर चला। राजकन्या के होने वाले भावी वर को एक मंदिर में उतार दिया गया और अपने विश्वासी आदमी के साथ पहरेदारों को वहां नियत कर दिया। लड़के से कह दिया कि तुम बहुत नहीं बोलना। फिर चूड़ामणि ने राजा से जाकर कहा-मगध देश का एक राजपुत्र चम्पककलिका के योग्य है, इसलिए उसे साथ ले आया हूँ। राजकुमार को देखने के लिये अनेक लोग आये, उसे बड़ा रूपवान् देखा और उससे कुछ बातें करके प्रसन्न होकर चले गये। प्रधान ने लग्न की सामग्री जुटायी, चार दिन तक लग्न का समारोह चलता रहा संपूर्ण नगर को राजा ने भोजन कराया। रात्रि के समय वरकन्या दोनों एक स्थान में रहे। राजकन्या ने प्रथम उसे देखने के लिये दासी को भेजा, दासी ने कुमार के कक्ष में जाकर देखा कि कुमार सुवर्ण की शय्या पर शयन कर रहे हैं। फिर राजकन्या चम्पककलिका हाथ में पंचारती लेकर आयी। उसने पति को निद्रायुक्त देखकर जगाने के लिये पांवों कि झांझन झनझनाई, परन्तु वह नहीं जागा। तब राजकन्या ने उसे अधिक निद्रा आयी जानकर उसकी नाक पर सुगन्धित पुष्प रखा तो भी वह नहीं जगा। फिर राजकन्या ने गुलाब जल में चन्दनादि सुगन्धित पदार्थ मिश्रित कर उसके शरीर पर छिड़के, परंतु उसको कुछ भी खबर नहीं। 'इसे लगता है कि निद्रा आ गयी है और बड़ी जोर-जोर श्वास ले रहा है', ऐसा जानकर राजकन्या निरुपाय हुई। अन्त में हाथ से हिलाकर जगाने का निश्चय किया। ऐसा करने से भी वह नहीं जागा, वह उसी प्रकार उच्च स्वर से श्वास लेता रहा। "इसे उत्तम सुगन्धित कोमल शय्या पर सोना कहां मिला होगा। इसी कारण अधिक निद्रा आयी है"। यह जानकर उसने समझा कि, यह राजकुल का कुमार नहीं है,बरन् कोई मूर्ख है। ऐसा विचार आते ही चूड़ामणि के बाल्यावस्था के वाक्य उसे याद आ गये और चित्त में वह दुःखित हुई। अन्त में राजकन्या ने उसका हाथ पड़कर उसे उठाकर बैठा दिया, अब वह जग गया। वह राजकन्या का स्वरूप चन्द्रमा के समान शोभित देखकर शय्या से नीचे उतर पड़ा और दोनों हाथ जोड़कर विनती करने लगा-हे राजपुत्री! मुझे यह खबर न थी कि, यह शय्या आपकी है, परंतु आपके सेवकों ने ही मुझे इसके ऊपर सोने की आज्ञा दी है, इससे मैं इसके ऊपर सो रहा था, मेरा अपराध क्षमा करो, मैं आपकी शरण हूँ।

राजकन्या को और भी निश्चय हो गया कि, यह मूर्ख है, इसको किसी प्रकार का भी ज्ञान नहीं। परंतु उच्च वर्ण है या नीचवर्ण, धनहीन है या धनवान् इसके निश्चय करने की उसकी इच्छा हुई। राजकन्या ने भवन के

कितने ही चमत्कारिक द्रव्य इसको दिखाये, परंतु उनमें से उसकी देखी अथवा सुनी एक भी वस्तु नहीं थी। प्रत्येक वस्तु उसके लिए नवीन ही थी। जिससे राजकन्या ने जान लिया कि यह किसी धनहीन का पुत्र है। फिर उसे चित्र शाला में ले गयी, वहां अनेक प्रकार के चित्र लगे हुए थे, परन्तु उसकी दृष्टि किसी पर भी स्थिर न हुई। देखते-देखते अन्त में वृन्दाबन देखा, वहां अनेक प्रकार के बड़े-बड़े वृक्ष थे, उन वृक्षों के बीच में श्रीकृष्ण ग्वाल-बालों के साथ गायें चरा रहे थे। यह देखकर एक क्षण के लिए वहां ठहर कर वह बोला-यह कैसा बैलों का झुण्ड है, कितने ग्वाले गाय चरा रहे हैं। यह स्थान कितना रमणीक है?

उसकी यह बात सुनकर राजकन्या मन में समझ गयी कि, यह अवश्य ग्वाल है। इस मूर्ख के साथ तमाम उम्र कैसे बीत सकेगी, इसे देखकर क्लेश ही होगा। अतएव इसका शिरश्छेदन करके इसे बाहर फेंक देना ही उत्तम होगा। यह विचार कर राजकन्या उसकी ओर देखकर बोली-तू मेरे योग्य नहीं है, इसलिये मैं तेरा मस्तक काटकर फेंक दे रही हूँ। राजकन्या के क्रोधयुक्त बचनों को सुनकर वह भयभीत होकर बोला कि मेरा मस्तक काटने से क्या लाभ होगा? वह राजकन्या बोली-तेरी मृत्यु हो जाने पर मेरा जन्मभर का दुःख दूर हो जायेगा। यह सुनकर वह विचारने लगा कि-इसकी मैंने किसी प्रकार की हानि नहीं की, फिर यह मुझे क्यों मारना चाहती है? वह यह सोच ही रहा था कि राजकन्या बोली-तू मूर्ख है इस कारण तेरे साथ संसार में रहने से विधवा होकर जीना अधिक श्रेष्ठ है। मूर्ख मित्र से बिना मित्र रहना उत्तम है। इसलिये अब मैं तुझे मारती हूँ।

उसने पूछा-मैं मूर्ख क्यों जन्मा?

राजकन्या ने उत्तर दिया-पूर्वजन्म में तूने सुकृत कर्म नहीं किये, इससे तू मूर्ख पैदा हुआ।

ब्राह्मण ने पूछा-अब मैं क्या करूँ?

राजकन्या ने कहा-इस नगर के बाहर कालीचन्द्र नामक ऋषि ठहरे हैं, कल उनके पास जाकर उनसे पूँछ।

यह सुनकर हाथ में नंगी तलवार लेकर राजकन्या ने उसका सिर काटना चाहा, पर ब्राह्मण अपनी जान बचाने के लिए विनयपूर्वक बोला--मुझे जीवन दान दो, आज से मैं इस नगर में कदापि नहीं आऊँगा। राजकन्या ने यह सुन कर विचारा कि पति का घात करना भी अच्छा नहीं इस कारण इसको छोड़ दूँ!

फिर ब्राह्मण वहां से भागकर नगर के बाहर पहुँचा और ढूंढ़ता-ढूंढ़ता

ऋषि के पास गया और ऋषि को देखते ही उसे किंचित् ज्ञान हुआ। उसने सोचा-अरे! मेरी स्त्री मुझे मारने को तत्पर हुई थी, धिक्कार है! मैं मूर्ख हूं। फिर ऋषिराज को प्रणाम करके पूछा कि हे मुनिराज! मैं अत्यन्त मूर्ख हूं, इसलिए मेरी पत्नी ने मुझे निकाल दिया, अब मैं क्या करूं?

उन्होंने उसे देखकर कहा-अरे बालक! तू तो संसार में अद्वितीय पंडित होगा धैर्य धर, भय मत कर, तू रविवार का व्रत धारण कर और तीन दिन तक मेरे पास रहकर इस मंत्र का जपकर, तू पूर्ण विद्वान् हो जायेगा।

उसने ऋषि की बात को स्वीकार करके मन्त्र का जप प्रारम्भ किया। राज मंदिर में से उसके निकल आने पर राजकन्या का चित्त शांत हुआ और उसने अपने देश में आये हुए मुनिराज की खबर पाकर दूसरे दिन प्रातःकाल उनके दर्शन करने का निर्णय किया। राजकन्या उनके पा गयी और ऋषिराज के सामने किसी पुरुष को बैठा देख, उसे जताने के वास्ते उसने अपने पांवों की झांझन झनझनाई। परन्तु वह पुरुष एकाग्रचित्त होकर मंत्र का जप कर रहा था, इसलिए वह जरा भी न हिला। तब राजकन्या ने अपनी सखी को इंगित कर कहा-

"अनिलस्यागमो नास्ति द्विपदो नैव दृश्यते ।
जलमध्ये स्थितं पद्मं कम्पितं केन हेतुना ।।'

अर्थात्-इस समय वायु का वेग नहीं है और न पक्षी अथवा कोई मनुष्य दीखता है, तो किस कारण जल में कमल कांप रहा है? ।।१।। उस ब्राह्मण को जप करते-करते तीन दिन व्यतीत हो गये थे और वह पूर्ण विद्वान् होकर संसार में अद्वितीय हो चुका था। जब उसके कान में उस श्लोक की ध्वनि पहुंची तब इसको चेत हुआ। पीछे मुड़कर देखा कि श्लोक बोलने वाली अपनी एक समय की विवाहिता स्त्री है। उसके प्रश्न का उत्तर उसने निम्न श्लोक कहकर दिया-

"पावकोच्छिष्टवर्णस्य शर्वर्या बन्धन कृतम् ।
मोक्षं न लभते कान्ते कम्पित तेन हेतुना ।।१।।"

अर्थात्-हे कान्ते! पावक अर्थात् अग्नि का जो उच्छिष्ट अर्थात् कालावर्ण, यह वर्ण ही है रूप जिसका ऐसा भौंरा रात्रि होने से बाहर नहीं निकल सका, इस कारण कमल कांपता हुआ दीख रहा है।।१।।

इस प्रकार का उत्तर सुनकर राजकन्या विचार में पड़ गयी-ऐसा बढ़िया उत्तर देने वाला कौन है? समीप जाकर देखा तो उस रात्रि को मूर्ख जानकर गृह से निकाला हुआ उसका पति ही था। मूर्ख जानकर मैंने तो इसको त्याग दिया था, परन्तु यह तो अत्यन्त गुणवान् ज्ञात होता है। क्योंकि इसने मेरे कहे

हुए प्रश्न का पूर्ण उत्तर दिया, वह दिखाई हुई मूर्खता तो शायद मेरी परीक्षा करने के लिए ही थी, ऐसा सोचकर राजकन्या सामने आयी और प्रथम ऋषिराज कालीचन्द्र को प्रणाम करके उस ब्राह्मण पुत्र से विनती करने लगी और बोली-हे नाथ! मुझसे जो अपराध हुआ है, उसे क्षमा कीजिये। मैं मूर्ख हूँ आपको दुःख पहुंचाने में मैंने कोई कसर नहीं उठा रखी।

यह सुन उसने कहा-हे राजकन्या! इसमें तेरा अपराध कुछ भी नहीं है, जो कुछ हुआ वह केवल प्रारब्ध के कारण ही हुआ है। यह कहकर उसने वहां का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया और उससे कहा कि, मैं तेरा उपकार कदापि नहीं भूल सकता; क्योंकि तेरे अनुग्रह से ही मुझे कालीचन्द्र ऋषिराज का दर्शन हुआ और इनसे मिलने का मार्ग तूने मुझे बताया है, इसलिये तू मेरी गुरु हुई, अब परस्पर पति-पत्नी का सम्बन्ध नहीं रहा और मैं आज से "कालिदास" हो गया।

इस प्रकार उसे समझाकर उसने उसे शांत किया और फिर मुनिराज को प्रणाम करके वह वहां से चल दिया। कुछ दिनों के बाद भोज राजा की कीर्ति सुनकर वह धारानगरी में आया। राजा भोज ने इसकी अपूर्व विद्वत्ता देखकर उसे अपनी विद्वत्-सभा का उसे मुख्य पंडित नियुक्त किया।

कला ३
(गोविन्द ब्राह्मण)

एक बार राजा भोज बाग में अपने प्रधान बुद्धिसागर के साथ टहल रहा था। उसी समय उसने सामने से एक ब्राह्मण को आता हुआ देखा। वह ब्राह्मण राजा के सामने बराबर नेत्र बंद किये चला आ रहा था। जब वह पास आ गया तब राजा ने पूछा-महाराज! आप मुझे आशीर्वाद नहीं दे रहे हैं, और नेत्र बंद किये चले जा रहे हो, इसका क्या कारण है?

ब्राह्मण ने उत्तर दिया-तुम राजा होकर किसी विद्वान् ब्राह्मण को कुछ भी नहीं देते हो तो व्यर्थ आशीर्वाद देने से क्या लाभ? तुम लोभी हो और लोभी का मुंह प्रातःकाल देखने से पूरा दिन किसी भी स्थान में लाभ नहीं होता।

राजा ने पूछा-आपका नाम क्या है?

ब्राह्मण को शास्त्र में लिखा है कि अपना नाम अपने मुख से नहीं लेना चाहिये। इसलिये पृथ्वी के ऊपर लिखता हूँ ऐसा कहकर लिख दिया-"गोविन्द"

राजो को विश्वास हो गया कि यह मनुष्य विद्वान है, फिर उसको एक लक्ष रुपया देकर प्रतिदिन सभा में अन्य विद्वानों के साथ आने को कहा।

कला ४
(मार्ग में कन्या)

एक समय राजा भोज शिकार के लिये वन में जाते-जाते अधिक दूर निकल गये। सूर्य की तेज किरणों से अत्यन्त सन्तापित होने के कारण उन्हें खूब प्यास घोर तृषा लगी, तृष्णा से अत्यन्त व्याकुल राजा एक वृक्ष के नीचे जमीन पर बैठ गये। उसी समय अत्यन्त रूपवती एक कन्या अपने कोमल करकमलों से पकड़े हुए और शिर पर रखे हुए छाँछ के एक कुम्भ को लेकर धारानगरी की ओर जा रही थी, उसको देखकर राजा ने तेज प्यास के कारण सोचा कि इसके पास जरूर कोई पीने की वस्तु है, इससे मेरी तृषा अवश्य शांत हो जायेगी। उन्होंने उससे पूछा हे तरुणी! इस घड़े में क्या वस्तु है?

वह कन्या राजा को तृषित जानकर अपने मुख की कांति को बिखेरती हुई बोली-

"हिमकुन्दशशिप्रभशंखनिभ परिपक्वकपित्थसुगंधरसम् ।
युवतीकरपल्लवनिर्मथितं पिब हे नृपराज रुजापहरम् ।।१।।"

अर्थात्-हे नृपराज! हिम (बर्फ) कुन्द तथा शंखसा श्वेत कांतिवाला, पके हुए कैथके सदृश सुगंधित रसयुक्त, युवती स्त्री के करपल्लवों से मथा हुआ और सब रोगों को नष्ट करने वाला यह पदार्थ है, इसे पीजिये।

इस प्रकार राजा ने उसके वचन सुनकर उस छाँछ को पी लिया और प्रसन्न होकर बोला-हे सुन्दरी! तू क्या चाहती हैं? लज्जा से दृष्टि नीचे कर नवयौवना मोह से व्याकुल हो बोली-

इन्दुं कैरविणीव कोकपटलीवाम्भोजिनीवल्लभं
मेघं चातकमण्डलीव मधुपश्रेणीव पुष्पव्रजम् ।
माकन्दं पिकसुन्दरीव रमणीवात्मेश्वर प्रोषितं
चेतोवृत्तिरियं सदा नृपवर त्वां द्रष्टुमुत्कण्ठते ।।१।।

अर्थात्-हे नृपवर! जिस प्रकार कुमुदिनी चन्द्रको, चकवों का समूह सूर्य को, चातकगण मेघ को, भ्रमरगण पुष्पों को, कोयल आम्र को, और स्त्री अधिक दिन से बिछुड़े हुए स्वामी को देखने की इच्छा करती है, उसी प्रकार मेरे चित्त की वृत्ति सदा आपको देखने के लिये उत्कण्ठित रहती है।

यह सुनकर राजा विस्मित होकर कहने लगा-हे युवती! मैं तुझको लीला देवी की आज्ञा के बिना स्वीकार नहीं कर सकता। फिर वह कन्या राजा के साथ-साथ धारानगरी को आयी और राजा से विनययुक्त कहने लगी कि हे राजन्! अब मुझे क्या आज्ञा है?

तब राजा ने लीला देवी से पूछकर उसके कथनानुसार उसे स्वीकार किया।

कला ५
(आओ मूर्ख)

एक दिन राजा भोज अपनी पटरानी के भवन में गया, वहां रानी और उसकी सखी एकान्त में वार्तालाप कर रही थी; राजा सीधे वहां चला गया। उसको देखकर रानी बोली-"आओ मूर्ख" यह सुनकर राजा विचार करने लगा आजपर्यन्त मुझसे कोई भी मूर्खता नहीं हुई, रानी ने आज तक मुझे कोई अपशब्द भी नहीं कहा, पर आज मैंने कौनसा मूर्खता का कार्य किया, कुछ याद नहीं आता। शायद इसका कोई और प्रयोजन हो, यह सोच राजा वहां से लौटकर सीधे अपने राजसिंहासन पर आ बैठा।

राजा भोज की सभा में चौदह सौ पंडित थे, उस समय जो भी पंडित सभा में आता राजा उससे "आओ मूर्ख" कहता। पंडितों ने मन में सोचा कि, हमें मूर्ख कहने में राजा का क्या हेतु है? बिना जाने पंडित विस्मित हो रहे थे। सबसे बाद में कालिदास आये, उनसे भी राजा ने उसी प्रकार कहा। कालिदास ने तत्काल ही उत्तर दियाः-

"खादन्न गच्छामि हसन्न जल्पे
गतं न शोचामि कृतं न मन्ये ।
द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि राजन्
किं कारणं भोज भवामि मूर्खः ।।१।।

अर्थात्–मैं खाता हुआ मार्ग में नहीं चलता, अधिक हँसता हुआ बोलता नहीं, गयी वस्तु का शोक नहीं करता, अपने किये का अभिमान नहीं करता और जहां दो लोग वार्तालाप कर रहे हों, वहां मैं तीसरा नहीं जाता। इन पांचों में से मुझसे एक भी मूर्खता नहीं हुई फिर हे राजन् आपने मुझे मूर्ख क्यों कहा? इसका उत्तर सुनकर राजा ने अपने मन में समझ लिया कि दो व्यक्ति वार्तालाप करते थे और मैं वहां गया, इसलिए मूर्ख साबित हुआ। पश्चात् राजा ने कालिदास से वह सब कथा कह सुनायी।

कला ६
(शतंजय कवि और कालिदास)

कोई पण्डित अथवा कोई व्यक्ति नया श्लोक बनाकर लाता तो राजा भोज उसे एक लक्ष रुपया देता था। इस कारण उसकी कीर्ति देश-देशान्तरों में फैल गयी थी। एक दिन शतंजय कवि ने श्लोक लिखकर अपने शिष्य के हाथ भोज की सभा में भेजा। वह श्लोक इस प्रकार था-

"अपशब्दशतं माघे भारवौ च शतत्रयम् ।
कालिदासे न गण्यन्ते कविरेकः शतंजयः ।।१।।

अर्थात्-माघकाव्य में एक सौ अपशब्द हैं, भारविमें तीन सौ हैं और कालिदास में अर्थात् इनके काव्यों में इतने अपशब्द हैं कि उनकी गिनती नहीं है, परन्तु कवि एक शतंजय ही है।

दैवयोग से मार्ग में उस शिष्य को कालिदास मिल गये। कालिदास ने शिष्य के हाथ में कागज देखकर उससे पूछा—तू कौन है? कहां से आया है? कहां जा रहा है? शिष्य ने उत्तर दिया-मैं शतंजय कवि का शिष्य हूँ। उन्होंने यह श्लोक लिखा हैं, इसे महाराज भोज की सभा में लेकर जा रहा हूँ। कालिदास ने उसमें अपनी निन्दा देखकर शिष्य से कहा-भाई तेरे गुरु ने यह श्लोक तो अति उत्तम बनाया है, परन्तु इसमें भूल से एक अशुद्धि रह गयी है, यदि वह ठीक हो जाये तो राजा भोज बहुत ही प्रसन्न होगा।

उस भोले शिष्य ने हाथ जोड़कर कहा कि-हे महाराज! जो आप इसे ठीक कर दें तो मेरे ऊपर और मेरे गुरु के ऊपर आपका महान् उपकार होगा।

कालिदास तो यह चाहता ही था उसने पहले 'अ' के पास 'ा' ऐसी लकीर खींच दी, इस कारण श्लोक का अर्थ ही बदल गया (पाठकों को ज्ञात हो कि यह शिष्य कालिदास को जानता नहीं था, केवल नाम ही सुना था और इसी कारण कालिदास को अधिक सुगमता हो गयी थी। पश्चात् उस शिष्य ने सभा में आकर कहा कि, यह नवीन श्लोक मेरे गुरु शतंजय कवि ने दिया है। राजा ने कहा सुनाओ, कैसा श्लोक है तब शिष्य ने निम्नलिखित श्लोक पढ़ा-

आपशब्दशतं माघे भारवौ च शतत्रयम् ।
कालिदासे न गण्यन्ते कविरेकश्शतंजयः ।।१।।

अर्थात्-'आप' अर्थात् जल के सौ नाम तो माघ कवि को ज्ञात हैं, तीन सौ भारविको ज्ञात हैं, और कालिदास को कितने हैं, उसकी गणना ही नहीं। परंतु

मुझ शतंजय कवि को तो केवल 'आप' ही शब्द ज्ञात है इसके अतिरिक्त अन्य नाम ही नहीं जानता।

यह श्लोक सुनकर बहुत से पंडित शतंजय कवि का उपहास करने लगे, अतएव वह शिष्य लज्जायुक्त होकर वहां से चला गया। उसने अपने गुरु से मार्ग में तथा सभा में हुई समस्त घटना कही। मार्ग में मिलने वाला मनुष्य कालिदास ही था इस बात का शतंजय कवि को विश्वास हो गया। वह लज्जित होकर उस नगर से निकलकर अन्य देश को चला गया।

कला ७
(सम्पूर्ण सुख)

एक समय मुख्य मंत्री ने राजा को बहुत अधिक व्यय करते देख कर उसके शयन के स्थान में एक कागज पर निम्नलिखित श्लोक का एक चरण लिखकर चिपका दिया कि–

१ च०–"आपदर्थे धनं रक्षेत्"

अर्थात्–आपत्ति के लिये धन की रक्षा करनी चाहिए।

राजा जब सोकर उठा तब उसने उसको पढ़ा और पढ़कर मन ही मन बहुत हँसा, फिर उसी पर राजा ने दूसरा चरण लिख दिया।

२ च०–"श्रीमतामापदः कुतः?"

अर्थात्–श्रीमानों को आपत्ति कहां!

दूसरे दिन मन्त्री ने दूसरे चरण को लिखा देखकर निम्नलिखित तीसरा चरण लिख दिया।

३ च०–"सा चेदपगता लक्ष्मीः"

अर्थात्–लक्ष्मी चली जायेगी तब। फिर राजा ने तीसरे चरण को देखकर चौथा चरण लिख दिया।

४ च०–"संचितार्थो विनश्यति ।।१।।

अर्थात्–तब एकत्र किया हुआ भी सब नष्ट हो जायगा।

मन्त्री इस चरण को देखकर राजा के चरणों में गिर पड़ा और कहा–हे राजन्! मेरा अपराध क्षमा कीजिये।

पश्चात् राजा अपने भवन में जाकर रानियों से अनेक प्रकार की वार्त्तालाप करके शयन-कक्ष में आकर सो गया।

उसी रात्रि में अवसर पाकर एक और ब्राह्मण सुरंग लगाकर राजा के शयन कक्ष में चोरों के लिये आया और वह वहां से मोती-रत्न आदि जड़े हुए

अनेक आभूषण चोरी करके ले जाने का वह विचार कर ही रहा था, कि राजा की आंखे खुल गयीं और वह निम्नलिखित श्लोक के तीन पाद बनाकर बारंबार कहने लगा–

३–"चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः
सद्बान्धवाः प्रणयगर्भगिरश्चभृत्याः ।
गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गाः"

अर्थात्–मन को हरनेवाली मेरी युवती स्त्रियां है, मित्र मेरे अनुकूल हैं बांधवजन श्रेष्ठ हैं, सेवकजन नम्रता से बोलनेवाले हैं, गर्जनेवाले हाथी हैं और अत्यन्त चञ्चल घोड़े हैं। इस प्रकार तीन चरण कहकर सम्पूर्ण सुख वर्णन कर रहा था। परन्तु चौथा चरण ठीक-ठीक न बन पा रहा था और श्लोक पूर्ण न होने के कारण बारंबार इन तीनों चरणों को दोहरा रहा था। चोर यह सुनते-सुनते बोल उठा–

"संमीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति ।।३।।"

अर्थात्–हे राजन्! जब नेत्र मुंद जायँगे (मृत्यु हो जायेगी) तब कुछ भी न होगा।

राजा इस चरण को सुनकर चमत्कृत हुआ कि 'इस समय यहां यह कौन मनुष्य है' देखा तो एक चोर खड़ा है। चोर राजा को अपनी ओर आता देखकर हाथ जोड़कर कहने लगा–महाराज! मैं चौर हूँ, मुझे क्षमा कीजिए। राजा अपना श्लोक पूर्ण हुआ जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उस चोर को वे सब आभूषण देकर संतुष्ट किया।

फिर वह धनहीन चोर (ब्राह्मण) बाजार में उत्तम-उत्तम वस्त्रादि और बहुमूल्य आभूषण धारण किये हुए विचर रहा था। राजा के आदमी उस ब्राह्मण को इतने आभूषण वस्त्रादि सहित देखकर विस्मित हुए और उसे पकड़कर राजा के पास ले गये।

राजा ने उसका पूरा हाल सुनकर कहा–हे ब्राह्मण! तुम इतने धनहीन थे, परंतु अब यह वस्त्र आभूषणादि कहां से लाये? तब ब्राह्मण बोला–

"भेकः कोटरशायिभिर्मृतमिव क्ष्मान्तर्गतं कच्छपैः ।
पाठीनैः पृथुपंकपीठलुठनाद्यस्मिन्मुहुर्मूर्च्छितम् ।।
तस्मिञ्शुष्कसरस्यकाल जलदेनागत्य तच्चेष्टितं ।
यत्राकुम्भनिमग्नवन्यकरिणां यूथैः पयः पीयते ।।"

अर्थात्–जहां मेंढक मृतकों के सदृश खखोड़लों में पड़े थे, कछुए पृथ्वी में पड़े थे, मछलियां जलरहित कीच में लोटती मूर्च्छित हो रही थीं, ऐसे सूखे सरोवर

में अकाल मेघ ने आकर वर्षा की, तब वह सब क्रीड़ा करने लग गये और वन के हस्तियों का समूह स्नान कर जल पीने लगा।

इस प्रकार ब्राह्मण का वचन सुनकर राजा अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसको अत्यंत विद्वान्, अपराधरहित रात्रि का चोर समझकर भी एक लक्ष रुपया प्रदान किया।

कला ८
(कालिदास का गुरु)

भोजराज की सभा में विष्णुशर्मा नाम का एक पंडित था। कालिदास की उससे अनबन थी। वह किसी प्रकार से कालिदास का अपमान करना चाहता था। एक दिन धारानगरी में एक अविद्वान् ब्राह्मण आया उसने विष्णु शर्मा से मिलकर कहा—महाराज! मुझे कोई विद्या तथा कला नहीं आती, मैं निर्धन हूं, किसी तरह प्रयत्न करके मुझे धन दिलाओ। मुझ पर आपका बड़ा अनुग्रह होगा। उस ब्राह्मण के ऐसे दीन वचन सुनकर विष्णु शर्मा को दया आयी, परंतु उस समय उसे अपनी और कालिदास की बात याद आई। वह बदला लेने की कोई युक्ति सोचने लगा। उसे एक युक्ति बहुत ठीक जँची। उसने उस ब्राह्मण से कहा—तुझको कोई विद्या नहीं आती, इसलिए राजसभा में जाकर तू विवाद भी नहीं कर सकता। परंतु तुझे एक उपाय बताता हूं, यदि तू वैसा करे तो तेरा कार्य हो जाएगा। वह उपाय यह है कि इस नगरी से बाहर जाकर तू साधु का वेष धारण करके बैठ जा, तेरी सेवा के वास्ते चार शिष्य मैं दूंगा। वहां से आते जाते मनुष्यों से तू चेलों से ऐसा कहलवाना कि ये "कालिदास के गुरु हैं" परंतु किसी से कुछ बोलना नहीं क्योंकि बोलने से मनुष्य की परीक्षा तत्काल हो जाती है।

वह ब्राह्मण हर्षपूर्वक स्वीकार करके नगर से बाहर साधु का वेष बनाकर जा बैठा। विष्णुशर्मा ने अपने चार विश्वासी व्यक्तियों को शिष्य बनाकर बैठा दिया। आने-जाने वाले लोग पूछते थे कि ये कौन हैं? तब शिष्य उत्तर देते थे कि ये कालिदास के गुरु हैं। यह बात सम्पूर्ण नगर में फैल गयी। कालिदास ने जब यह बात सुनी और विचार किया तो उन्हें यह विश्वास हो गया कि यह कार्य विष्णुशर्मा का ही है। राजा ने सुनकर कालिदास से पूछा कि—कालिदास! तुम्हारे गुरुजी पधारे हैं, उनसे मिलने तुम जाते हो या नहीं?

कालिदास ने उत्तर दिया—महाराज! मेरे गुरुजी पधारे हैं और उनके दर्शन करने को न जाऊँ यह कैसे हो सकता है?

एक दिन कालिदास रात्रि को गुरुजी के पास गये। शिष्यों से कहा कि–हम गुरु के साथ बात करेंगे। तुम लोग बाहर जाओ। यह कहकर उनको बाहर निकाल दिया। फिर कालिदास ने उस ब्राह्मण से पूछा–अरे ब्राह्मण! तू मेरे गुरु का नाम धारण करके तो बैठा है, परंतु उसका परिणाम क्या होगा, इस पर भी विचार किया हैं या नहीं?

'कालिदास स्वयं सामने आकर बैठा है, यह न जाने क्या करेगा,' सोचते ही वह ब्राह्मण मन ही मन भयभीत हो उठा और हाथ जोड़कर बोला–महाराज! यह वेष मैंने विष्णुशर्मा के कहने से धारण किया है। मेरा अपराध क्षमा करो। उदरपोषण का कोई साधन न होने पर मैंने विष्णुशर्मा से सहायता मांगी। तब उसने मुझे इस स्थान पर लाकर बैठा दिया है। ये आदमी भी उसी के हैं। उस ब्राह्मण को भयभीत देखकर कालिदास ने फिर कहा–यह वेष तूने धनप्राप्ति के निमित्त किया है, इसलिये कोई चिन्ता नहीं, मैं तुझे धन दिलवाऊँगा। परंतु एक कार्य करना कि राजा जब तुझे बुलाये तब राजसभा में तो आना, परन्तु वे तुझसे कोई प्रश्न करें तो तू मेरी ओर अगुंली कर देना और कुछ भी न बोलना'।

यह कह कालिदास वहां से चला गया। दूसरे दिन राजा ने कालिदास के गुरुजी को पालकी में बुलवाया और सभा में योग्य आसन पर बैठाकर नमस्कार कर कालिदास से पूछा–गुरुजी के साथ वार्तालाप करने की मेरी इच्छा है।

कालिदास ने उत्तर दिया कि,–वे समर्थ हैं।

राजा ने गुरुजी से कहा–महाराज! लंकाधीश दशानन हैं। उसे कोई 'रावन' कहते हैं और कोई 'रावण' कहते हैं, इन दोनों में कौन सा ठीक है?

उसने कभी राजसभा तो देखी न थी न राजा के साथ कभी वार्त्ता ही की थी। राजा का यह प्रश्न सुनकर वह ब्राह्मण घबड़ा गया। उस समय कालिदास की ओर अंगुली उठाना तो वह भूल गया और हड़बड़ाकर 'राभण' बोल उठा। यह शब्द सुनकर राजसभा विस्मित हुई। राजा ने उससे पूछा कि तुमने 'राभण' कैसे कहा? इसको सुनकर वह और भी घबरा गया और तत्काल कालिदास की ओर अंगुली उठा दी। इशारा पाते ही कालिदास ने तत्काल यह श्लोक कहा:–

"भकार: कुम्भकर्णे च भकारश्च विभीषणे
तयोर्ज्येष्ठे कुलश्रेष्ठे भकार: किं न विद्यते ।।१।।"

अर्थात्–कुम्भकर्ण ने नाम में भकार है, विभीषण के नाम में भकार है, तब इन दोनों से बड़ा और कुल में श्रेष्ठ जो भाई है उसके नाम में भकार क्यों न होना चाहिये?

यह सुनकर राजा ने कालिदास के गुरु को एक लक्ष रुपया दिया। कालिदास का यह कर्तव्य जानकर विष्णुशर्मा मन में बहुत लज्जित हुआ।

कला ९
(पुत्रहोम)

एक दिन राजा भोज भेष बदलकर रातको नगर की गतिविधि की जानकारी लेने के लिये निकले। फिरते-फिरते वे एक ब्राह्मण के घर में जाकर खड़े हो गये। वहां देखा कि एक ब्राह्मण की स्त्री अपने पति की सेवा में तत्पर थी अर्थात् अपनी जंघा पर पति का सिर रखकर सोये हुए स्वामी को हवा कर रही थी। इतने में ही उसका (बालक) अग्नि से प्रज्वलित झँझरी में गिर गया। वह बालक अग्नि में गिरा पड़ा था, तो भी उस पर अग्नि का कुछ असर नहीं हो रहा था, बल्कि अग्नि में पड़ा पड़ा वह हँसने लगा। उसकी माता पतिव्रता थी, इस कारण उसको अग्नि में से बाहर निकालने के बदले उसने उसे पड़ा रहने दिया और हंस हंसकर बातें करने लगी। यह चमत्कार देखकर राजा अपने घर वापस आया और दूसरे दिन सभा में पंडितों से उसने प्रश्न किया–

समस्या–"हुताशनश्चन्दनपंकशीतलः"

यह श्लोक का चौथा पाद है, इसके तीन चरण कहो?

यह सुनकर सब पण्डित तो चुप हो गये, परन्तु कालिदास ने उत्तर दिया–

"सुतं पतन्त प्रसमीक्ष्य पावके
न बोधयामास पतिं पतिव्रता ।।
पतिव्रताशापभयेन पीडितो
हुताशनश्चन्दनपंकशीतलः ।।१।।"

अर्थात्–"अपना पुत्र अग्नि में पड़ा है" यह जानकर भी उस पतिव्रता स्त्री ने अपने स्वामी को नहीं जगाया अर्थात् उठी नहीं और अपने पति की सेवा में निमग्न ही रही, उसके पुत्र को अग्नि से कुछ भी पीड़ा नहीं हुई। क्योंकि अग्नि को पतिव्रता के शाप का भय था, इस कारण अग्नि चन्दन के सदृश शीतल हो गयी।

इस प्रकार कालिदास का श्लोक सुनकर राजा भोज मन में विचार करने लगा कि–यह चमत्कार मैंने ही देखा, मेरे अतिरिक्त और किसी को भी इसकी खबर नहीं थी, परंतु कालिदास ने वैसा ही कह सुनाया, इस कारण इसको

कोई मन्त्र सिद्ध है। ऐसा मन में सोचकर राजा अपने भवन में गया।

कला १०

(कालिदास का मच्छ)

एक दिन राजा भोज से किसी पंडित ने कहा—महाराज! आपकी सभा में कालिदास के सदृश किसी का भी मान नहीं और वह अत्यंत उत्तम जाति का ब्राह्मण है, किन्तु उत्तम होने पर भी मच्छाहार करता है, उसके लिए यह उचित नहीं है।

पंडित के इस प्रकार के वचन सुनकर भोज को आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि यह बात सम्भव नहीं हो सकती, क्योंकि ऐसा अधर्म का कार्य कालिदास से कदापि नहीं हो सकता है और न हुआ है।

दूसरा पंडित जो कालिदास से द्वेष करता था, उसने भी इस बात का समर्थन करते हुए कहा—यदि यह बात आपको प्रत्यक्ष दिखा दें, तो सत्य मानोगे या नहीं?

राजा ने स्वीकार कर लिया। फिर उस पंडित ने कालिदास के पीछे गुप्त रूप से आदमी लगा दिये। इसकी खबर कालिदास को भी हो गयी। उसने सोचा कि इन लोगो ने मेरे विषय में नाना प्रकार की बातें राजा से कही हैं, इसलिए इनको उचित शिक्षा देनी चाहिए।

यह विचारकर वह दूसरे दिन ही नदी पर स्नान करने लगा। वहां से एक बड़ा सा मच्छ पकड़ कर कपड़े के भीतर छिपा लिया। यह बात उस पंडित के छिपे हुए आदमी ने देखी। उसने जाकर तत्काल पंडितों से कहा। पंडितों ने तुरंत ही राजा से जाकर कहा कि कालिदास नदी में स्नान करके आ रहे हैं, उन्हें इधर ही बुला लो और देखो कि उनके पास मच्छ है या नहीं, उन्होंने अभी ही एक मच्छ पकड़कर कपड़े मे लपेट रखा है। जब घर आते हैं तब ले आते हैं। किसी तरकीब से कालिदास को यहां बुला लीजिये, तब हमारी बात का भी आपको विश्वास हो जायेगा।

भोजराजा ने मन में विचार किया कि यदि यह बात सत्य होगी तो अत्यंत बुरा होगा। पश्चात् उन पंडितों से कहा—तुम कहते तो ठीक हो परंतु यदि यह बात असत्य हुई तो तुम्हें नगर से बाहर निकाल दूंगा। यह बात तुम्हें स्वीकार हो तो मैं कालिदास को बुलाऊँ।

पंडितों को मालूम था ही, उन्होंने झट स्वीकार कर लिया। राजा ने कोतवाल को आज्ञा दी कि कालिदास नदी पर स्नान करने गया है, किसी से

बात किये बिना ही और उसके साथ जो वस्तु हो उसके सहित उसे यहां ले आओ।

यह आज्ञा सुनते ही कोतवाल ने कालिदास को नदी पर से सीधे लाकर राजा के समीप उपस्थित किया। कालिदास की बगल में कपड़े में लिपटा हुआ मच्छ था, उसे देखकर राजा ने पूछा।

राजा–'कक्षे किम्' (बगल में क्या है?)

कालिदास–'मम पुस्तकम्' (मेरी पुस्तक है)

राजा–'किमुदकम्' (इसमें जल कैसा?)

कालिदास–'काव्येषु सारोदकम्' (काव्य में जो सार है, वही जल है।)

राजा–'गन्धः किम्' (इसमें गन्ध कैसा है?)

कालिदास–'ननु रामरावणवधात्संग्रामगन्धोत्कटः ?'

(राम-रावण के युद्ध में जिनकी मृत्यु हो गयी थी उनकी दुर्गन्ध है)।

राजा–'जीवः किम्' (यह पुस्तक जीवित क्यों है) कालिदास–'मम गौडमन्त्रलिखितात्संजीवनं पुस्तकम्' (यह पुस्तक मेरे गौड मंत्र से लिखी हुई है, इससे जीवित है)।

राजा–'पुच्छः किम्' (इसके पूंछ क्यों है?)

कालिदास–'खलु तालपत्रलिखितम्' (यह पुस्तक ताड़ के पत्तों पर लिखी है इससे।)

राजा–'हाहा गुणाढ्यो भवान्' (हाहा यह हँसने का अनुकरण है) कालिदास! तुम बड़े गुणवान् हो। अर्थात् हँसते हुए और यह पिछला वाक्य कहते हुए राजा ने तत्काल कालिदास की बगल में से वस्त्र में लिपटा हुआ मच्छ खींच लिया और उसे खोला तो मन्त्र के प्रसाद से पत्तों पर लिखी हुई पुस्तक निकली, पुस्तक को देखते ही पंडित भयभीत हो गये। राजा ने पंडितों की समस्त बात कालिदास से कही, पश्चात् कोतवाल की आज्ञा दी कि इन सब पंडितो का घर छीनकर इनको देश से बाहर निकाल दो। यह आज्ञा सुनकर कालिदास ने राजा से विनती की हे महाराज! देश में उत्तम मनुष्य भी होते हैं और दुष्ट भी होते हैं। बड़े मनुष्य को सबके ऊपर एक सी ही दृष्टि रखनी चाहिये। जैसे वट आदि वृक्ष अपने पोषणकर्ता को और नष्टकर्त्ता को एक सी ही छाया करते हैं, वैसे ही आप हमारे वृक्ष हैं, और हम आपकी छाया में बैठे हैं। इस कारण इन सब पंडितों के ऊपर कृपा करके इनका अपराध क्षमा कर दीजिये।

कालिदास के ये वचन सुनकर राजा ने उसको क्षमा करके कहा (हे कवियों में श्रेष्ठ कालिदास! तुम्हारी समानता करने में इस पृथ्वी पर कोई भी

शक्तिमान् नहीं हैं। क्योंकि जो तुमसे द्वेष करते है उनके ऊपर भी तुम उपकार ही करते हो, इसलिये तुम धन्य हो।

सब पंडित भी कालिदास के इस महान् उपकार से उनका यश गाने लगे तदनंतर कालिदास राजा की आज्ञा लेकर अपने घर गये।

कला ११
(कालिदास का मुण्डन)

धारानगरी में एक अत्यन्त चतुर, रूप और यौवनसम्पन्न वेश्या रहती थी। कालिदास उसके यहां जाता था और राजा भोज भी उसके यहां गुप्त रूप से जाते रहते थे। वह वेश्या बड़ी चतुर थी। अपने घर में राजा भोज और कालिदास का मेल नहीं होने देती थी। परन्तु वे दोनों एक दूसरे की बात जानते थे, उसके यहां प्रतिदिन दोनों आते थे, तो भी कालिदास राजा भोज को न मिलता था। राजा ने एक उपाय सोचकर उस वेश्या से कहा–जब कालिदास तुम्हारे पास आये, तब उससे कहना कि जो तुम मुंडन कराकर आओ तो मैं तुम्हारे वश में रहूँ और राजा भोज का आना बंद करा दूं। वेश्या ने इसी प्रकार कहना स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन जब कालिदास आये, तब वेश्या ने उसी प्रकार कहा। कालिदास मन में समझ गया कि यह काम राजा का है, परंतु राजा की भी हंसी करने का निश्चय कर उसने मुंडन कराया। वेश्या को मुंडन किया हुआ मस्तक दिखाकर कहा–आज जब राजा भोज आयें, तब तू अप्रसन्न हो जाना, राजा जब तुझे मनाने आयें तब तुम राजा से कहना कि पहले तुम गधे की बोली बोल दे फिर मैं तुम्हारा मनोरंजन करूँगी। यह कहकर कालिदास वहीं दूसरे कमरे में छिप गया। कुछ समय के बाद राजा आया। उस समय वेश्या अप्रसन्न होकर बैठ गयी। राजा ने उसका कारण पूछा, परंतु उसने उत्तर न दिया। तदनंतर राजा ने उसको मनाया, तब वेश्या ने कहा–राजाजी यदि तुम गधे की बोली बोल दो, तो मैं तुमसे बोलूंगी। राजा विषयांध होकर विचारने लगा कि यहां मुझे कौन देखता है, मैं गधे की बोली बोल रहा हूँ। यह बात किसी को भी ज्ञात न होगी।

यह सोचकर राजा तीन बार गधे की बोली बोला। बाद में वेश्या ने राजा को नृत्य-गायन आदि से मोहित कर विदा किया। राजा के जाने पर कालिदास भी वहां से चला गया। दूसरे दिन जब राजा सभा में बैठा और कालिदास की मूँछ आदि सब केश मुंड़े देख कर पूछा–

कालिदास कविश्रेष्ठ कस्मिन्पर्वणि मुण्डनम् ।

अर्थात्–हे कवियों में श्रेष्ठ कालिदास! आज किस पर्व का मुंडन कराया है?

कालिदास ने तत्काल उत्तर दिया कि–

राजानो गर्दभायन्ते तत्र पर्वणि मुण्डनम् ।

अर्थात्–जहां राजा लोग गधे के सदृश बोलते हैं अर्थात् (आप बोले थे) तब उसी पर्व में मुंडन कराया है। राजा और कालिदास के अतिरिक्त इन दोनों वाक्यों का अर्थ किसी ने भी नहीं समझा।

कालिदास की बुद्धि से राजा आश्चर्यचकित हो अपने भवन में चला गया।

कला १२
(गुणनिधि पंडित)

राजा भोज की सभामें कालिदास महाविद्वान् है, इसलिए उसके साथ वाद विवाद करना चाहिए, यह निश्चय करके मदनपुर निवासी गुणनिधि नामक पंडित धारानगरी में आकर एक धर्मशाला में ठहरा। उसके मन में ऐसा विश्वास था कि कालिदास को जीतकर सभा में श्रेष्ठ पदवी को प्राप्त करूँगा।

वह प्रतिदिन भाड़े की पालकी में बैठकर बड़ी धूमधाम से नगर में विचरता था। कालिदास को भी इस बात की खबर हो गयी। कालिदास धीवर (पालकी उठानेवाला) का वेष धारण करके जहां गुणनिधि ठहरा था उस स्थान के निकट जाकर बैठ गया। कुछ समय के पीछे गुणनिधि के सेवक ने बाहर आकर पुकारा कि कोई धीवर है?

तब कालिदास ने आकर कहा–हां महाराज! क्या आज्ञा है?

उस सेवक ने कहा–जा तीन धीवर ले आ।

कालिदास तीन धीवर और ले आया, पालकी तैयार करके गुणनिधि से कहा–महाराज! पालकी तैयार है।

गुणनिधि अभिमानपूर्वक पालकी में बैठ गया और आज्ञा दी कि बड़े बजार में होकर राजमन्दिर के आगे से होते हुए यहां ही आ जाना।

आज्ञा होते ही कालिदास और अन्य धीवरों ने पालकी उठाई और उसकी इच्छानुसार नगर में फिराकर पीछे वहीं लाकर उतार दिया। गुणनिधि पालकी से उतरकर धीवररूप कालिदास से बोला–

श्लोकपूर्वार्ध—"अयमान्दोलिकादण्ड
स्कन्ध किं तव बाधति?"

अर्थात्—हे पालकीवाले! क्या इस पालकी का डंडा तुम्हारे कन्धे को ब[illegible] दुःख देता है?

इस स्थान में गुणनिधि व्याकरण के नियम के विरुद्ध 'बाधते' के स्थान [illegible] 'बाधति' बोला, इसको सुनकर धीवर वेषधारी कालिदास ने झट निम्नलिखि[illegible] आधा श्लोक अर्थात् उत्तरार्ध कह सुनाया—

"न बाधते तथा मांस यथा बाधति बाधते"

अर्थात्—तुमने जो व्याकरणविरुद्ध 'बाधते' के स्थान में 'बाधति' कहा है व[illegible] 'बाधति' जितना बाधित करता है उतना पालकी का डंडा दुःख नहीं देता।

यह सुनकर आश्चर्यचकित हो गुणनिधि ने कहा—इतना ज्ञान तुझे कैसे हुआ?

धीरवेषधारी कालिदास ने कहा—तुम्हारे सदृश पंडितों के समागम से मैं कुछ समझता हूँ।

पंडित ने पूछा—किसका समागम है?

उसने उत्तर दिया कि इस नगर में कालिदास नाम के पंडित रहते हैं। उनके यहां मैं जाता हूं और उनकी संगति से ही कुछ समझता हूँ।

धीवर का यह कथन सुनकर गुणनिधि ने मन में विचार किया कि—जिस कालिदास का धीवर इतना विद्वान् है, फिर वह कितना विद्वान् होगा, इस विद्वान् को किस प्रकार पराजित कर सकूँगा। परन्तु धन खर्च करके यहां तक आया हूँ तो कालिदास कैसे हैं, यह तो देखूँ। यदि उसे अत्यन्त विद्वान् देखूँगा, तो वादविवाद न करके और अपना नाम तथा आने का कारण गुप्त रखकर वापस लौट जाऊँगा।

यह निश्चय करके वह कालिदास के घर जाने को तैयार हुआ। कालिदास वहां से निकलकर अपने घर आया और दासी का वेष धारण करके आंगन झाड़ने लगा। इतने में गुणनिधि ने आकर दासीरूप कालिदास से पूछा—हे दासी! कालिदास कहां है?

दासी ने उत्तर दिया—

मुखलीनखलीनलीलया नमयन्नुन्नमयन्नवं हयम् ।
निरगादुरगारिरंहसा पुरगारुत्मतगोपुराद्बहिः ।।१।।

अर्थात्—घोड़े की लगाम को थाम उसके ऊपर सवार होकर नये घोड़ों को कुदाते हुए कालिदास गरुड़ के समान अत्यन्त वेग से नीलमणियों के पुर दरवाजे के बाहर गये हैं।

दासी का यह वचन सुनकर उसकी विद्वत्ता देखने का निश्चय करके फिर उससे पूछा–हे स्त्री! तू कालिदास की दासी है, परन्तु तेरे शरीर पर आभूषण क्यों नहीं?

दासी ने उत्तर दिया–

हस्तस्य भूषणं दानं सत्यं कण्ठस्य भूषणम् ।
श्रोत्रस्य भूषणं शास्त्रं भूषणैः किं प्रयोजनम् ।।१।।

अर्थात्–दान करना हाथ का आभूषण है, सत्य बोलना कंठ का भूषण है, शास्त्र सुनना कान का भूषण है तो फिर अन्य भूषणों से क्या प्रयोजन है?

यह सुनकर गुणनिधि ने पूछा–हे स्त्री! तुम कौन से देव की पूजा करते हो?

उसने उत्तर दिया–

विहंगो वाहनं यस्य त्रिकचा यत्र भूषणम् ।
सालपा वामभागे च ते देवाः शरणं मम ।।१।।

अर्थात्–वि अर्थात् गरुड, हं अर्थात् हंस और गो अर्थात् बैल, यह तीन जिनके वाहन हैं और त्रि अर्थात् त्रिशूल, क अर्थात् कमंडलु और च अर्थात् चक्र, यह तीन जिनके हाथों में हैं और सा अर्थात् सावित्री ल अर्थात् लक्ष्मी और पा अर्थात् पार्वती यह तीन जिनके वाम ओर है, ऐसे देव मेरी रक्षा करनेवाले हैं अर्थात् उन्हीं की पूजा करती हूँ।

यह सुनकर गुणनिधि वहां से बाहर निकलकर विचारने लगा कि, यह दासी होने पर इतनी गुणवती है तो मेरा नाम गुणनिधि अर्थात् गुण का भंडार है, ऐसा होने पर भी मैं खाली हूं। जिस कालिदास की दासी को ही जीतना अशक्य है तो कालिदास को जीतना बिल्कुल असंभव है। यह विचार कर वह धारानगरी त्यागकर चल दिया।

कला १३
(त्रिपीडास्तु दिने दिने)

एक दिन राजा भोज सभा में बैठे थे, उस समय एक ब्राह्मण ने आकर राजा को आशीर्वाद दिया–

"त्रिपीडास्तु दिने दिने।

अर्थात्–तुम्हें तीन पीड़ाएं प्रतिदिन हों।

ब्राह्मण का ऐसा कथन सुनकर राजा अत्यन्त क्रोधित हुआ और सेवकों को आज्ञा देकर उसको बाहर निकलवा दिया। वह ब्राह्मण इस तरह से अपमानित

होकर घर को लौट चला। मार्ग में उसे कालिदास मिले, उनसे उसने सब बात कही। ब्राह्मण को समझाकर कालिदास ने उससे कहा–तू अपने घरमें निश्चिंत होकर बैठ, मैं अब सभा में जाकर इसी बात का समाधान करता हूं। यह कहकर कालिदास सभा में गये। कालिदास से राजा ने वही प्रश्न किया–

"त्रिपीडास्तु दिने दिने"

यह सुनकर कालिदास ने तत्काल उत्तर दिया–

प्रदाने विप्रपीडास्तु पुत्रपीडास्तु भोजने ।
शयने पत्निपीडास्तु त्रिपीडास्तु दिने दिने ॥१॥

अर्थात्–दान देते समय ब्राह्मण को दान किस प्रकार दूं, यह पीड़ा होती है भोजन करते समय पुत्र को किस प्रकार संतोषित करूं यह पीड़ा होती है शयन करते समय पत्नी के साथ विलास करने की पीड़ा होती है। हे राजा! इस प्रकार तीन पीड़ाएं तुम्हें प्रतिदिन होंगी।

कालिदास का श्लोक सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उस ब्राह्मण को सभा में बुलाकर क्षमा मांगी और धन देकर उसे प्रसन्न किया।

कला १४
(विलोचन कवि का कुटुम्ब)

एक समय विलोचन कवि अपने कुटुंम्ब सहित सभा में आकर चुपचाप खड़ा रहा। उसको देखकर राजा बोला–

"क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे"

अर्थात् महान् पुरुषों के कार्य की सिद्धि शरीर ही में होती है, सामग्री में नहीं होती! वह कवि अत्यन्त चतुर था, वह यह समस्या सुनकर तत्काल बोल उठा–

घटो जन्मस्थानं मृगपरिजनो भूर्जवसनं
वने वासः कन्दादिकमशनमेवंविधगुणः ।
अगस्तः पाथोधिं यदकृत करांभोजकुहरे
क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे ॥१॥

अर्थात्–जिसका जन्मस्थान तो कुंम्भ है, मृग आदिक कुटुम्ब हैं, भोजपत्र वस्त्र हैं, वन में वास है, कंद आदि भोजन है ऐसे गुणवाले अगस्त्यमुनि समुद्र का आचमन कर गये, इस कारण बड़ों की क्रियासिद्धि शरीर में ही होती है, सामग्री से नहीं। इस समस्यापूर्ति को राजा सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और बहुमूल्यवान् सोलह रत्न देकर उसको संतुष्ट किया, पश्चात् उसकी स्त्री से

कहा हे मातः! तुम भी कहो। यह सुनकर वह भी तत्काल बोल उठी—

रथस्यैकं चक्रं भुजगनमिताः सप्त तुरगा
निरालम्बो मार्गश्चरणविकलः सारथिरपि ।
रविर्यात्येवान्तं प्रतिदिनमपारस्य नभसः
क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे ।।१।।

अर्थात्—सूर्य के रथ का चक्र तो एक ही है और सात घोड़े हैं वह भी सर्पों से बँधे हुए हैं, आकाश में मार्ग है और सारथि पंगुला है इस प्रकार होने पर भी सूर्य प्रतिदिन अपार आकाश का अन्त कर देता है इस कारण बड़ों की क्रियासिद्धि शरीर में ही होती, सामग्री से नहीं।

इसको सुनकर तो राजा अत्यंत प्रसन्न हुआ और इसको बहुमूल्यवान् बत्तीस रत्न देकर संतुष्ट किया। पश्चात् इसके पुत्र से कहा—हे विप्रपुत्र! तुम भी कुछ कहो, यह सुनकर वह भी तत्काल कहने लगा—

न जेतव्या लंका चरणतरणीयो जलनिधि—
र्विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः
पदातिर्मर्त्योऽसौ* सकलमवधीद्राक्षसकुलं
क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे ।।१।।

अर्थात्—लंकापुरी न जीतने योग्य थी, न समुद्र ही चरणों से तरने योग्य था, फिर भी पुलस्त्य ऋषि का पौत्र 'रावण' शत्रु था और वहां रणभूमि में केवल वानर ही सहायक थे और रामचन्द्र पैदल चलने वाले मनुष्य ही थे, तब भी उन्होंने सम्पूर्ण राक्षसों के कुल को नष्ट कर दिया इससे यही सिद्ध होता है कि महान् पुरुषों के कार्य की सिद्धि शरीर ही से होती है, सामग्री से नहीं।

यह सुनकर राजा अतिशय प्रसन्न हुआ और इसको चौंसठ बहुमूल्य रत्न देकर संतुष्ट किया। तदनन्तर कोमल करकमलों वाली सम्पूर्ण सुन्दर अंक के अवयवों से शोभित शृङ्गार रस से उत्पन्न हुई मूर्ति के सदृश, अपनी लज्जा से मूर्ति धारिणी लज्जा को भी जानने वाली उस विलोचन कवि की पुत्रवधू से भी कहा—हे मातः! तुम भी कुछ कहो वह भी तत्काल कहने लगी—

धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी चञ्चलदृशां
दृशां कोणो बाणः सुहृदपि जडात्म हिमकरः ।
स्वयं चैकोऽनङ्गः सकलभुवनं व्याकुलयति
क्रियासिद्धिः सत्वे भवतिमहतां नोपकरणे ।।१।।

अर्थात्—जिसके पुष्प तो धनुष हैं, भौंरारूप प्रत्यंचा है, चंचल नेत्रों वाली

---

* रामचन्द्रः ।

स्त्रियों के नेत्रकोण ही जिसके बाण हैं, जड़ात्मा चन्द्रमा जिसका मित्र औ स्वयं अंग रहित है, ऐसा अकेला ही कामदेव सम्पूर्ण लोक को व्याकुल कर दे है इस कारण बड़ों के कार्य की सिद्धि प्रताप से ही होती है, सामग्री से नहीं इसकी कविता सुनकर तो राजा सहित सम्पूर्ण सभा चमत्कृत हो गयी। औ राजा ने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी लीलावती रानी के सम्पूर्ण मोती र जड़ित आभूषण देकर हर्ष प्रकट किया और इन सबको अत्यन्त चतुर जानक अपने नगर में ही रखा।

कला १५

(कालिदास की अवज्ञा)

एक दिन राजा भोज कालिदास को साथ लिये बाग में विचर रहे थे, उस समय भद्रमणि नामक महान् पंडित वहां आया, राजा को बीच में लेकर कालिदास को दाहिने हाथ की ओर लिया और स्वयं बायीं ओर होकर विचरने लगा। राजा बायीं ओर था, इस कारण उसने अपना यश बढ़ाने के लिये एक श्लोक के तीन चरण रचकर राजा तथा कालिदास को सुनाये–

गृह्णत्येष रिपोः शिरः प्रतिजवं कर्षत्यसौ वाजितं ।
धृत्वा चर्म धनुः प्रयाति सततं संग्रामभूमावपि ।।
द्यूतं चौर्यमथ स्त्रियं च शपथं जानाति नायं करो–

अर्थात्–जो यह वाम हाथ है, वह दक्षिण हाथ से आगे होकर बड़े–बड़े कार्य करता है, संग्राम में जब जाता है तब प्रथम वाम हाथ से शत्रु का मस्तक पकड़ पीछे दक्षिण हाथ से खड्ग लेकर शत्रु का मस्तक काटते हैं, प्रथम ढ़ाल अथवा धनुष वाम हाथ में पकड़कर पीछे दक्षिण हाथ से खड्; उठाते हैं, अथवा धनुष की डोरी खींचते हैं दूसरे वाम हस्त से निंदा करने योग्य काम ठीक नहीं होता है, जैसे कि जुआ खेलना, चोरी करना, परस्त्री का स्पर्श करना तथा सत्य–असत्य शपथ खाकर वचन देना, ये चार काम वाम हाथ से नहीं होते

अब इस श्लोक का चौथा चरण कालिदास को पूरा करना चाहिये। यह सुनकर कालिदास ने कहा–इस श्लोक का चौथा चरण यह है–

दानानुद्यततां विलोक्य विधिना शौचाधिकारी कृतः ।।१।।

अर्थात्–वाम हाथ से दान कभी नहीं दिया जाता, इसलिये ब्रह्मा ने उसको गुदा–प्रक्षालन करने का काम सौंप कर उसे शौचाधिकारी बना दिया है।

यह सुनकर भद्रमणि अत्यन्त लज्जित हुआ वह तत्काल राजा की आज्ञा

लेकर चला गया और उस दिन से कभी भी कालिदास से श्रेष्ठ होने की कोशिश नहीं की।

कला १६
(मणिभद्र और सुशर्मा)

एक दिन कालिदास कार्यवश धारानगरी से बाहर गये हुए थे। उनके पीछे धारानगरी में एक आश्चर्यजनक घटना घटी। ब्राह्मण के दो पुत्र मणिभद्र और सुशर्मा विद्याभ्यास करने काशी गये। मणिभद्र का नियम था कि, प्रातःकाल उठकर स्नानादि नित्यकर्म करने के पश्चात् विद्याभ्यास करने बैठता। परन्तु सुशर्मा का नियम इसके विरुद्ध था अर्थात् प्रातःकाल उठकर स्नानादि कुछ भी न करके वैसे ही पढ़ने बैठ जाता था। इस प्रकार कुछ समय के बाद दोनों ने गुरु के सम्मुख हाथ जोड़कर कहा—गुरुजी अब हमें आज्ञा दो तो हम अपने घर जायें। गुरु की स्वीकृति पाकर दोनों धारानगरी को चले। चलते—चलते एक रमणीय वन में से गुजरे। उसमें एक नदी बहती थी और उसके निकट घने वृक्षों की शीतल छाया थी। मणिभद्र ने नदी देखकर उसमें स्नान करने की इच्छा प्रकट की।

सुशर्मा ने पूछा—आप यहां स्नान करके क्या करोगे? मणिभद्र ने बतलाया—यहां भोजन करके निश्चिन्त हो जायें, सुशर्मा को यह बात अच्छी लगी। दोनों स्नान करके नदी से बाहर आये। फिर सुशर्मा ने कहा कि अपने पास सीधे का सामान तो है, परन्तु अग्नि कहां मिलेगी? मणिभद्र ने सलाह दी कि तू सामग्री तो तैयार कर मैं अग्नि ले आऊँगा। सुशर्मा ने भोजन की सामग्री तैयार करके मणिभद्र से कहा—अब अग्नि ले आओ। मणिभद्र ने अग्नि का मंत्र पढ़कर अग्नि उत्पन्न कर दी।

यह देखकर सुशर्मा ने सोचा कि हम दोनों ने एक साथ अध्ययन किया है, परन्तु मेरे मन्त्र से कुछ भी सिद्धि नहीं होती, पर मणिभद्र प्रत्येक मन्त्र का उपयोग कर सकता है। हम दोनों घर जायेंगे तो इसकी विद्या विख्यात होगी और मैं नगण्य रहूंगा, इसलिए इसे यहीं मार डालूं फिर घर जाऊं। यह विचार कर उसने भोजन बनाया। भोजन करने के पश्चात् दोनों विश्राम करने लगे। मणिभद्र निर्भय होकर सो रहा था, परन्तु सुशर्मा को नींद न आयी। मणिभद्र को पूर्ण गहरी निद्रा में जानकर सुशर्मा उसे मारने के लिये उसके सीने पर सवार हो गया। मणिभद्र की नींद खुल गयी। वह अपने मारने के लिए सुशर्मा को तलवार हाथ में लिए देखकर अपनी जान बचाने के लिये हाहाकार करने

लगा। परन्तु सुशर्मा ने उसकी कुछ भी न सुनी। जब मणिभद्र ने देखा कि यह किसी भी प्रकार नहीं मानता, तब अपने पिता को चार अक्षर लिख कर देने को कहा। सुशर्मा ने उसकी यह बात मान ली। तब उसने बड़ के पत्र पर "अ, प्र, शि, ख," चार अक्षर लिखकर दिये कि यह पत्र मेरे पिता को दे देना। उसके बाद सुशर्मा ने उसके सीने पर पैर रखकर एक हाथ में उसकी चोटी पकड़ी और दूसरे हाथ में लिए हुए खड्ग से मणिभद्र का मस्तक काट डाला। बाद में अपना और उसका सामान लेकर सुशर्मा अपने घर आया। सुशर्मा को अकेला आया देखकर मणिभद्र के पिता ने अपने पुत्र का हाल पूछा। तब उसने कहा–मणिभद्र का अध्ययन अभी पूर्ण नहीं हुआ है, इसलिए वह काशी में ही रह गया। मेरा अध्ययन पूर्ण हो गया और मैं गुरुजी की आज्ञा लेकर चला आया हूँ। जो तुम्हारे पुत्र ने मुझे पत्र दिया है, यह लो। यह कहकर उसने बड़ का पत्र दे दिया। मणिभद्र के पिता ने वे चार अक्षर पढ़े, पर उनका मतलब नहीं समझ पाया। बह बड़े–बड़े विद्वानों के पास गया, परंतु कोई भी उनका अर्थ न बता सका। मणिभद्र का पिता राजा भोज की सभा में गया। राजा को आशीर्वाद देकर वह पत्र राजा के सम्मुख रखा और सुशर्मा की कही हुई बात बताकर कहा–महाराज! आपकी सभा में बड़े–बड़े पंडित हैं, उनसे इन चार अक्षरों का अर्थ पता कराइये। राजा ने उन चार अक्षरों का अर्थ पंडितों से पूछा, परन्तु कोई पंडित उत्तर न दे सका। जब पंडितों ने कुछ भी उत्तर न दिया, तब राजा भोज ने क्रोधित होकर कहा–मेरे पास इतने पंडित होने पर भी जो इन अक्षरों का अर्थ न निकल सका, तो मेरी महान् अपकीर्ति होगी। आज से बत्तीस दिन के भीतर इनका उत्तर मुझे मिल जाना चाहिये। इतने दिनों में भी मुझे उत्तर न मिलेगा तो सबको मृत्यु की शरण लेनी पड़ेगी।

यह कहकर राजा ने सभा विसर्जित कर दी। सब पंडित अपने घर चले गये। उस दिन से सभी पंडित इन चार अक्षरों के अर्थ की खोज में लग गये। परंतु कुछ भी समझ में न आया। धीरे–धीरे इकतीस दिन बीत गये, केवल एक दिन शेष रह गया है। पंडित सम्पूर्ण आशा छोड़कर बैठ गये कि कल तक उत्तर नहीं दिया गया तो मृत्यु निश्चित है। दैवेच्छा देखिये कि एक पंडित का पुत्र अपने घर से अप्रसन्न होकर अपने पास के दूसरे ग्राम को चला। मार्ग में रात्रि होने पर पशुओं के भय से बड़ के वृक्ष पर चढ़कर बैठ गया। उस वृक्ष के नीचे प्रतिदिन रात्रि को बेतालों के साथ में भूत–पिशाचों की सभा होती थी। पहले कुछ पिशाचों ने वह स्थान स्वच्छ किया, फिर बैताल आकर मिट्टी के ऊपर बैठा। पंडित का पुत्र उस बड़ के वृक्ष पर बैठा सब देख रहा था। भय के कारण उसे निद्रा नहीं आयी थी। बैताल ने उस दिन के चरित्र की अपने मन्त्री आदि

से खबर पूछी और प्रत्येक को एक–एक कार्य सौंपकर सभा विसर्जन करने ही वाला था; कि सब भूत–प्रेतों ने विनती की, हे महाराज! आज बहुत दिन हुए हमें खाने को कुछ नहीं मिला। हमारे लिये भी कुछ यत्न करना चाहिये।

यह सुन बैताल ने कहा–राजा भोज की सभा में एक ब्राह्मण "अ, प्र, शि, ख" इन चार अक्षरों का प्रश्न लाया है। (अब ब्राह्मण का पुत्र ध्यान देकर सुनने लगा) उसका अर्थ पंडित बत्तीस दिनों में न बता पायेंगे, तो राजा भोज उनका शिरश्छेदन कर देगा। इन शब्दों का अर्थ बताने की सामर्थ्य किसी पंडित में नहीं है और कालिदास दूसरे देश गया हुआ है। वह कुछ दिनों तक अभी आ भी नहीं सकता है, अतएव कल बत्तीस दिन पूरे होंगे, राजा प्रत्येक पंडित की जान लेगा, तब तुम लोगों को जरूर भोजन मिलेगा। भूतों ने पूछा–उन चार अक्षरों का ऐसा क्या कठिन अर्थ है? कृपा करके हमें भी तो बताइये।

बैताल ने कहा–वह चार अक्षर एक श्लोक के चारों चरणों के पहिले के एक एक अक्षर हैं, वह श्लोक इस प्रकार है–

अनेन तव पुत्रस्य प्रसुप्तस्य वनान्तरे ।
शिखामादाय हस्तेन खड्गेनापहृतं शिरः ।।१।।

अर्थात् 'तेरा पुत्र वन में सोता था, उस समय इसने हाथ से चोटी पकड़कर खड्ग से मस्तक काट डाला'। इन बातों की किसी पंडित को खबर नहीं है यह बात उसने कहकर सभा विसर्जित कर दी। कुछ समय बाद प्रातःकाल हुआ और वह ब्राह्मण का पुत्र बड़ के वृक्ष से नीचे उतरकर अपने घर आया और स्नानादि करके अपने पिताजी से कहा–पिताजी! आपका मुख मुरझाया–सा दीखता है, इसका क्या कारण है, तुम्हें ऐसी क्या चिंता है? कृपा करके कहिये।

उस पंडित ने अपने पुत्र से वह सब बात कही। उसके पुत्र ने कहा–तुम क्यों चिन्ता करते हो, आज मुझे सभा में ले चलिये, उन चार अक्षरों का उत्तर मैं दूंगा। पहले तो अपने पुत्र का यह कहना पिता ने नहीं माना, परन्तु जब पुत्र ने अधिक हठ किया तब उसने उसे सभा में साथ ले चलना स्वीकार किया। वह पंडित भोजन करने बैठा परंतु भोजन विशेष चिन्ता के कारण अच्छा न लगा। अधरकाया–सा उठकर खड़ा हो गया, किन्तु पुत्र ने पूरा भोजन किया। वह पंडित घर के सब मनुष्यों से विदा लेकर अपने पुत्र के साथ राजसभा में गया। कुछ समय में सब पंडित एकत्र हो गये। राजा ने पूछा उन चार अक्षरों का क्या उत्तर लाये? किसी ने भी उत्तर न दिया राजा ने तीन बार वह प्रश्न पूछा,

पश्चात् किसी को उत्तर न देता देख वह बालक खड़ा हुआ और कहने लगा कि उन चार अक्षरों का अर्थ मैं कहता हूँ। यह कहकर बैताल का कहा हुआ श्लोक उसने सुना दिया। और कहा कि, इस श्लोक के प्रत्येक चरण के प्रथमाक्षर ही तुम्हारे चार अक्षर हैं। चतुर्दश वर्ष की आयु वाले बालक का यह शब्द सुनकर राजा भोज तथा अन्य सब पंडित आश्चर्य में भरकर मन ही मन विचार करने लगे कि यह बालक कुछ पढ़ा न होने पर भी इतना विद्वान् है। निःसन्देह ही यह कोई महापुरुष है परन्तु राजा के मन में संदेह हुआ कि यह अर्थ ठीक है इसका प्रमाण क्या? यह विचार कर राजा ने उस बालक से पूछा–यह अर्थ ठीक है, इसका क्या प्रमाण है?

उस पंडित ने कहा–जिसने ये चार अक्षर लाकर दिये हैं, उसे सभा में बुलाकर पूछें, तब निश्चय होगा।

राजा ने सुशर्मा को बुलाकर पूछा। सुशर्मा का मुख तो कुंभला गया, परन्तु स्वीकार न किया। उसका मुख मुरझाया हुआ देखकर राजा को कुछ शक हुआ। उसने सेवकों को आज्ञा दी कि इसे रस्सी से मारो। यह सुनते ही सुशर्मा ने स्वीकार कर लिया। तब राजा ने उसको यथोचित दंड दिया और उस पंडित–पुत्र को अपनी सभा में पंडित पद दिया। सब पंडितों ने उसका उपकार माना और उसके मित्र बन गये।

अब वन में क्या हुआ, वह देखिये–सब भूत–प्रेत मांस का भोजन करने की आशा से मध्यरात्रि तक बैठे रहे, परन्तु कुछ लाभ न हुआ। रात्रि में जब सभा भरी, तब भूतों ने बैताल से प्रार्थना की कि हमें आपकी आज्ञानुसार आज सम्पूर्ण दिन बाट देखते–देखते बीत गया, परन्तु कुछ खाने को न मिला।

बैताल ने बताया–हमारी कही हुई बात में एक विघ्न हो गया, वह यह है कि कल रात को जिस समय हम बातें कर रहे थे, उस समय इस वृक्ष पर एक पंडित का पुत्र बैठा था, उसने मेरा कहा हुआ वृत्तान्त सुनकर राजा से उन चार अक्षरों का अर्थ बता दिया। इसलिए अपनी बात पूरी नहीं हुई, यह कहकर उसने सभा विसर्जित कर दी।

कला १७
(फांसी की शिक्षा)

एक बार राजा भोज कालिदास पर अत्यन्त क्रोधित हो उठे और मारने वालों को आज्ञा दी कि इसे वन में ले जाकर मार डालो। राजा की आज्ञानुसार वे कालिदास को वन में ले गये, फिर उन्होंने कालिदास से राजा की आज्ञा बतायी। यह भयंकर राजाज्ञा सुनते ही कालिदास सोचने लगा कि मैंने ऐसा

क्या अपराध किया है, कि राजा ने मुझे फांसी का दंड दिया। जो होना होगा वह तो होगा ही, परन्तु जहां तक हो सके प्राण बचाने का उपाय करना ही चाहिये। अतः मारने वालों को समझा दूं। यदि इन्हें दया आयेगी, जो जीवित रह जाऊंगा, वरना तो अब आयु पूरी हो ही गयी है।

फिर एक मन्त्र का मन में स्मरण करके मारने वालों से बोला कि कुछ भी अपराध न करने पर राजा ने मुझे मार डालने की आज्ञा दी है, अब मुझे प्राणदान देना तुम्हारे हाथ में है।

मारने वाले कालिदास को उत्तर न देकर परस्पर विचार करने लगे कि इस ब्राह्मण का कुछ अपराध न होने पर भी राजा ने मूर्खता से इसको मारने की आज्ञा दी है, यदि इसे जीवित छोड़ दें और राजा से कह दें कि मार डाला, तो हमारा क्या होगा?

यह सोचकर उन्होंने कालिदास से कहा–भाई हम तुम्हें छोड़ तो देंगे, परन्तु यदि तुम फिर कभी। नगर में आये और राजा को ज्ञात हो गया कि तुम अभी जीवित हो तो राजा हमें हमारे परिवारों सहित कोल्हू में पेरवा देगा, इसका विचार कर लो।

कालिदास ने उत्तर दिया–मैं वेष बदलकर दूसरे देश में चला जाऊंगा और अपना नाम किसी को भी न बताऊंगा।

कालिदास का यह उत्तर सुनकर मारने वालों ने कालिदास को छोड़ दिया और राजा से जाकर बताया कि–महाराज की आज्ञानुसार हमने उस ब्राह्मण को अत्यन्त घोर वन में ले जाकर मार डाला।

वहां से वेष बदलकर कालिदास दूसरे देश में चला गया। धीरे–धीरे राजा को हर समय उसकी आवश्यकता होने लगी, परन्तु जब आवश्यकता होने लगी तो राजा को पश्चात्ताप होने लगा। राजकार्य की भी उसे कुछ सुधि न रही निरंतर कालिदास को याद कर– करके रोने लगा। परन्तु क्या रोने से कालिदास फिर जीवित होकर आ सकता था?

एक दिन राजा को सूझा कि कालिदास की रक्षक काली है, उसे मारने की सामर्थ्य किसमें है? कालिदास मरा तो नहीं होगा, मारने वालों को बुलाकर ठीक से हाल पूछना चाहिये।

राजा ने मारने वालों को बुलाकर पूछा कि जिस ब्राह्मण को तुम्हें दो महीने पहिले मारने की आज्ञा दी थी, उसे तुमने किस तरह मारा? ठीक–ठीक बताओ। यह सुनकर मारने वाले घबरा गये, कि कहीं राजा को उसके जीवित रहने की खबर तो नहीं मिल गयी? परन्तु हमें स्वीकार नहीं करना चाहिये, उन्होंने यह विचार किया और उत्तर दिया–अन्नदाता के विपरीत हम किस

प्रकार चल सकते हैं? आपकी आज्ञानुसार हमने उसी समय उसका वध क
डाला।

राजा के शब्द सुनकर पहले उत्तर देने में वे कुछ झिझके थे, इससे राजा
सन्देह हुआ और पूछा कि तुम किसका वध करने गये थे, तुम्हें मालूम है?
कालिदास था, उसको मंत्र की सिद्धि है इससे उसे मारने की सामर्थ्य किसी
नहीं, है। अब तुम सच–सच बताओ मैं तुम्हें अभय वचन देता हूं।

मारने वालों ने जब कालिदास का नाम सुना और राजा ने अभय वच
दिया तब वे सत्य कहने को तैयार हुए। उन्होंने कालिदास को जिस प्रक
जीवित छोड़ दिया था, वह सब राजा को बता दिया। यह सुनकर राजा
अपार आनंद हुआ। मारने वालों को राजा ने पारितोषिक देकर वहां से वि
किया। फिर खोजने वालों को बुलाकर कालिदास को ढूँढ़ने की आज्ञा
खोजने वाले कालिदास को सभी स्थानों में देखा, परंतु कहीं पता नहीं लग
अन्त में राजा ने एक उपाय सोचकर घोषणा कर दी कि जो कोई नया श्लो
रचकर लायेगा, राजा की ओर से उसे एक लक्ष रुपया भेंट में दिया जायेग
यह बात फैलते–फैलते देश–देश में फैल गयी। यहां राजा ने ऐसी तरकी
निकाली कि अपनी सभा में एकपाठी द्विपाठी त्रिपाठी आदि पंडितों
क्रमवार नियुक्ति कर दी। जब कोई नया श्लोक लाकर पढ़ता, तब एकपा
उसको पढ़ देता और कहता था कि यह श्लोक तो पुराना है, क्योंकि मुझे य
है। उसे सुनकर द्विपाठी बोलता कि यह तो हमें भी याद है और यही त्रिपा
पढ़ता। इस प्रकार सबके कहने पर श्लोक नया नहीं ठहरता था और ल
वाला निराश होकर चला जाता था। एक दिन जिस ग्राम में कालिदास रह
था, उस ग्राम का एक ब्राह्मण नया श्लोक रचकर धारानगरी में ले गया। पर
निराश होकर आया और आकर कालिदास से जान–पहचान होने के का
सभा का सब हाल कहा कि भाई क्या कहूं मैं उत्तम नया श्लोक रचकर ले ग
था, परन्तु राजा भोज की सभा ने उसे प्राचीन ठहरा दिया। धारानगरी त
जाना भी पड़ा, और वहां जाकर जो अपमान हुआ, सो अलग से परन्तु वह
नहीं जानता था कि यह (कालिदास) कौन है

कालिदास समझ गया कि, राजा ने मेरे ढूंढ़ने की यह युक्ति निकाली
अतएव मुझे अब युक्ति से ही प्रकट होना चाहिये। फिर उस ब्राह्मण से कहा
तुझे एक नया श्लोक देता हूं, जिसे तू राजा के सम्मुख ले जायेगा तो राजा
एक लक्ष रुपया अवश्य देगा। ब्राह्मण ने स्वीकार किया और कालिदास
श्लोक लेकर धारानगरी गया। राजसभा में जाकर बोला मैं नया श्लोक ला
हूं। राजा की आज्ञा होने पर उसने श्लोक पढ़ा–

"स्वस्ति श्रीभोजराज त्रिभुवनविदितो धार्मिकस्ते पिताऽभूत्पित्रा ते वै गृहीता
नवनवतिमिता रत्नकोटचो मदीयाः । ता मे देहीति राजन् सकलबुधजनैर्ज्ञायते
सत्यमेतन्नो वा जानन्ति ते तन्मम कृतिमथवा देहि लक्षततो मे ॥१॥

अर्थात्–हे राजा भोज आपके पिता धार्मिक और सत्यवक्ता थे यह तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। इसलिए कहता हूं कि, तुम्हारे पिता ने मुझसे ९९००००००० (निन्यानवे करोड़) रत्न लिये थे, वे मुझे मिलने चाहिये, यह बात आप की सभा के पंडितों को भी ज्ञात है, यदि कदाचित् ज्ञात न हो तो इस श्लोक को नवीन मानकर मुझे एक लक्ष रुपया देना चाहिये।

यह श्लोक सुनकर एकपाठी द्विपाठी आदि कोई भी पंडित नहीं बोले। यदि श्लोक पुराना है यह कहें तो राजा भोज के पिता निन्यानवे करोड़ रत्न के कर्जदार ठहरते और इस श्लोक को नवीन कहें तो एक लक्ष रुपया देना पड़ता है, इस कारण वे चुप रहे।

यह श्लोक सुनकर राजा भोज के मन में और ही विचार उत्पन्न हुआ कि अब तक नवीन श्लोक लेकर बहुत पंडित मेरे पास आये, परन्तु कोई भी एक लक्ष रुपया लेकर नहीं जा सका, परन्तु आज यह पंडित अवश्य ले जायेगा। लगता है कि यह श्लोक कालिदास का रचा हुआ है, इसे कालिदास मिल गया मालूम होता है। यह विचार कर उस ब्राह्मण से पूछा–कहो महाराज! तुम्हें कालिदास पंडित कहां मिले और वे अब कहां हैं? उस ब्राह्मण ने उत्तर दिया–महाराजाधिराज! आपके पास पहले मैं एक श्लोक लेकर आया था, पर वह सभा में प्राचीन ठहरा। इससे मैं निराश होकर अपने घर को लौट गया। वहां मेरा कालिदास से परिचय था, मैंने उनसे आपकी सभा की बात कही। उन्होंने मुझे यह श्लोक रचकर दिया और वे गोदावरी के समीप पैठन नगर में हैं। राजा ने उसको एक लक्ष रुपया दिया तथा वस्त्रालंकार देकर आनंदित कर दिया। पश्चात् राजा अपने प्रधान सहित उस नगर में जाकर कालिदास से मिला। राजा ने अपने अपराध की क्षमा मांगी और बड़े सत्कार से उनको धारानगरी वापस ले आया।

कला १८

(राजा भोज के पूर्वजन्म का वृत्तान्त)

एक बार राजा भोज के मन में इच्छा हुई कि मुझे मनुष्य देह और उसमें भी उत्तम वर्ण मिला है, इसका कारण और इसके पहले मैं कौन था, इस बात को पता करना चाहिये। राजा ने कालिदास से पूछा–कालिदास! मैं तुमसे जो

भी पूछता हूं तुम उसका बराबर उत्तर देते हो। अब यह बताओ कि पहले ज
में मैं कौन था?

कालिदास ने उत्तर दिया, महाराज! आप पूर्वजन्म का हाल पूछते हो,
यह किसी शास्त्र में लिखा तो है नहीं इसलिए इसका क्या उत्तर दूं? भोज
कहा–लिखा हो या न हो, पर मुझे पूर्वजन्म के बारे में जानना है, इसलिए
मास के भीतर तुम खोज कर किसी तरह मुझे बताओ, नहीं तो तुम्हारी कुश
नहीं।

यह सुनकर कालिदास उदास मन से अपने घर को चला गया और
दिन से कभी–कभी सभा में आता शेष और दिन घर में ही पड़ा रहता।
बात का प्रायः सबको ही पता चल गया। उसके बहुतेरे हितचिन्तक उसके प
आकर उसे समझाते कि राजा को प्रिय लगे ऐसी सत्य असत्य जो भी बात
समझा दोगे, वह मान लेगा। परन्तु कालिदास ने कहा कि जान भले ही च
जाये, पर असत्य नहीं बोलूंगा। यदि झूठ बोलूं भी और राजा को बाद में प
चल गया तो क्या वह मेरी खाल नहीं खिंचवा लेगा। इसलिए भाइयो! कृ
करके मुझसे ऐसी सलाह मत दो। पर जब वह न माना तो लोगों ने समझा
छोड़ दिया। धीरे–धीरे पांच मास व्यतीत हो गये। एक दिन कालिदास
भोजन करते समय विचार किया, कुछ दिन में ही छह मास पूर्ण हो जायें
समय पूरा हो जायेगा, तब राजा भले ही मेरे प्राण न ले, पर अपमानित
करेगा ही। और वह अपमान मुझसे सहन नहीं होगा, तो जीव देना ही होग
अतएव उस समय के अपमान से इस समय विष खाकर मरना अधिक उत्तम
इस प्रकार चिंता करता हुआ, वह पूर्ण भोजन किये बिना ही हाथ मुंह धोक
उठ गया। घर में केवल विधवा पुत्रवधू थी। श्वसुर के पूर्ण भोजन न करने अ
उसके चेहरे की उदासी को देखकर पुत्र–वधू समझ गयी कि कोई बात
जरूर। कालिदास जब वस्त्रादिक धारण करके बाहर जाने लगा, तब पुत्रव
लज्जा त्यागकर उसके सम्मुख आकर खड़ी हो गयी। उसे देखकर कालिद
को आश्चर्य हुआ। वह बोली–हे श्वसुरजी आप से आज तक मैं नहीं बोली,
आज बोलती हूँ मेरा यह अपराध क्षमा कीजिये। चार–पांच मास से अ
उदास दिखते हो और आज पूरा भोजन भी नहीं किया, इसका सही–स
कारण मुझे अवश्य बताइये।

कालिदास ने दुःखी होकर उत्तर दिया कि पुत्र–वधू! यह बात तुम्ह
जानने योग्य नहीं है। इसलिए मैं तुमसे कह नहीं सकता, मुझे जाने दो। वधू
कहा श्वसुरजी! यदि इस समय सासजी अथवा आपके पुत्र जीवित होते
उनसे आप बात कहते कि नहीं? इसलिये मुझे अपनी पुत्री समझ

सत्य–सत्य कहिये।

वधू के शब्द सुनकर कालिदास बालक की भांति रोने लगे। ससुरजी को कोई अधिक दुःख है यह समझकर वह बोली–ससुरजी! तुम्हें ऐसा क्या दुःख है, जो बालक की भांति रो रहे हो, यदि आप नहीं बताते हो तो अब मैं लज्जा त्यागती हूँ और यह कहकर नेत्रों की लज्जा त्यागकर उसने कहा–मैं आपकी पुत्री हूँ और आप मेरे पिता हैं, अब आप सविस्तार मुझसे कहें। बहुत गुप्त रखना उचित न समझकर कालिदास बोले–हे पुत्री! आज पांच मास हो गये हैं, राजा ने मुझसे अपने पूर्वजन्म की बात पूंछी थी। यह बात शास्त्र में मैंने कहीं नहीं देखी। मैंने जब कोई उत्तर नहीं दिया, तब राजा ने छह महीने का समय दिया है। अब इन छह महीनों के भीतर यदि यह बात मैं नहीं बता सका तो राजा मेरा घोर अपमान करेगा। मैं मरने से भयभीत नहीं होता हूँ,परन्तु अपमान मुझसे सहन न हो सकेगा। अपमान से विष खाकर मरना श्रेष्ठ है। भोजन करते समय मुझे यह विचार सूझा है, इसलिए आज ही विष खाकर मरने का मैंने निश्चय किया है और अब मैं विष लेने जा रहा हूं।

ये शब्द सुनकर वधू ने प्रसन्न होकर कहा–'पिताजी! इसमें ऐसी क्या बात है? इस बात को तो मैं जरा देर में बतला सकती हूं'। कालिदास ने आश्चर्य के साथ बोले–'वधू तुम किस आधार पर कह सकती हो? वधू ने समझाया जब राजा पूछे कि मेरे पूर्व जन्म का विवरण मिला? तब कहियेगा कि–हे राजा! मैं तो क्या! मेरी विधवा पुत्रवधू ही इसे बता देगी? फिर जब राजा मुझसे पूछेगा तब मैं उत्तर दे दूंगी। अब आप शान्ति से भोजन करके सभा में जाकर आनन्द से बैठो। किसी बात की चिंता मत करो।

पुत्रवधू के कहने पर विश्वास करके कालिदास ने भोजन किया, और सभा में प्रसन्न मन होकर जा बैठे। पांच महीने से कालिदास उदास रहते थे और आज उन्हें प्रफुल्ल मन देखकर राजा ने पूछा–क्यों कालिदास, मेरे पूर्व जन्म की बात का पता चल गया क्या?

कालिदास ने दृढ़ता से उत्तर दिया–राजाजी! मैं तो क्या मेरी विधवा पुत्रवधू भी इस बात को जानती है।

राजा ने सोचा कि–जब इसकी पुत्रवधू यह बात जानती है तो न जाने वह कितनी विदुषी होगी, इस बात को तो इसकी पुत्रवधू के मुख से ही सुनना चाहिए।

राजा ने अपने वृद्ध प्रधान से कहा कि–कालिदास की विधवा पुत्रवधू को सम्मान–पूर्वक बुला लाओ। राजा की आज्ञा पाकर वह तत्काल वधू को लाने के लिये गया।

वधू ने प्रधान को उत्तर दिया—भोज मेरे पिता के समान हैं, ऐसा मैं मानतं हूं, इसलिए वे मेरे घर आवेंगे, तो मेरी बात सुन सकेंगे।

प्रधान ने राजा से जाकर वधू की बात कही। राजा कालिदास तथा वृद्ध प्रधान को साथ लेकर कालिदास के घर आये। वधू ने राजा को अत्यन्त सत्का पूर्वक बैठाकर कहा—हे राजाधिराज! आपके पूर्वजन्म का वृत्तान्त पूर्ण सुनाउ या अपूर्ण!

राजा ने उत्तर दिया कि सुनाओ तो पूर्ण सुनाओ, अपूर्ण सुनने से क्या प्रयोजन? वधू ने कहा—यदि आपको पूर्ण बात सुननी हो तो यहां से उत्त दिशा की ओर अमुक ग्राम है उस ग्राम में एक किसान नौकर रहता है उसकं आयु २० वर्ष की है। जिस दिन आप वहां पहुंचेंगे, उसी दिन उस किसान कं गाय चोरी चली जायेगी, और उस किसान का पुत्र चोरों के पीछे भागेगा परन्तु चोर उसको काट डालेंगे। आप उस समय उसकी ओर से उसको बचाना। तब वह आपके पूर्वजन्म की सब बातें कहेगा।

इतना सुनकर राजा वहां से उठकर अपने महल में आये। प्रधान को राजकाज सौंप साधारण वस्त्र पहनकर अकेले किसी से भी न कहकर उत्तर कं ओर चल पड़े। जब आधी दूर पहुंचे, तब याद आया कि उस लड़के का ना पूछना तो भूल ही गया, परन्तु अब पीछे लौटकर पूछना ठीक नहीं, वह आगे को ही बढ़े चले। छठे दिन संध्या समय एक छोटे से ग्राम में जा पहुंचे। रात्रि मे कहां ठहरूं खड़े होकर वह सोच ही रहे थे कि एक किसान का लड़का गाय चराता हुआ दिखायी पड़ा। राजा को देखते ही उसने कहा क्यों राजा भोज! आओ! राजा ने पूछा—भाई! मैं तो तुमको पहँचानता भी नहीं कि तुम कौन हो, फिर तुम मुझे कैसे जानते हो?

किसान ने उत्तर दिया—कालिदास की विधवा पुत्रवधू ने तुम्हें जिसके पा भेजा है, वह मैं ही हूं।

जहां अपना राज्य नहीं, और जहां मैं पहले कभी आया भी नहीं, फि इसने किस प्रकार मुझे पहचाना? राजा भोज विचार में पड़ गये। फिर सोच कि अच्छा हुआ जो यह लड़का यहीं मिल गया, नहीं तो इसे मैं किस प्रका ढूंढ़ता और रात्रि में कहाँ रहता।

उस लड़के ने राजा से निवेदन किया कि—मेरे घर चलो।

राजा ने कहा—जिस काम के लिये मैं आया हूँ, तू पहले उसको कह।

उस लड़के ने उत्तर दिया—यह बात तो तुमसे मैं बाद में कहूँगा, अभी त मेरे साथ घर चलकर विश्राम करो। आज आधी रात में हमारे सेठ की गा चुराने का शोर होगा, उस समय मैं चोरों के पीछे जाऊँगा। चोर मुझे मा

डालेंगे, परन्तु मेरा जीव दस घड़ी दिन चढ़े तक रहेगा, उस समय तुम वहां आ जाना, तब तुमसे कहूंगा।

राजा उसके साथ ग्राम में आ गया। उसके घर जाकर भोजन किया। रात्रि होने पर सब सो गये, परन्तु राजा को निद्रा न आयी। आधी रात होने पर गायें चुरा लेने का शोर हुआ। वह किसान का पुत्र तलवार लेकर चोरों के पीछे दौड़ा। राजा भी उसके पीछे जाने लगा, तब किसान ने उसका हाथ पकड़कर कहा! भाई तुम परदेशी हो, इस समय कहाँ जाते हो? प्रातःकाल होने पर जाना, अकेले मार्ग भूल जाओगे। यह कह राजा को उसने रोका। जब नौ घड़ी दिन चढ़ गया तब राजा को जाने दिया राजा वहीं गया, जहां लड़का कटा पड़ा था। राजा को देखकर उस लड़के ने कहा–हे राजा! इतनी देर से क्यों आये? अब मेरा जीव जाने का समय आ गया है, इस कारण मुझसे अधिक नहीं बोला जाता। अब यहां से एक महीने के रास्ते पर पाटन नगर है, वहां पर तुम आना, उस ग्राम में नगर सेठ के यहां मैं जन्म लूँगा। मुझे तुमको चालीस हजार रुपये देने हैं, वे दिलवाकर दूध पीकर फिर नहीं पीऊँगा, यदि तुम महीने के भीतर उस नगर में न आओगे तो तुम्हें ब्रह्म हत्या, बाल हत्या, और स्त्री हत्या का पाप लगेगा। इतना कहने पर उसका जीव निकल गया। राजा वहां से चल पड़ा। चलते–चलते एक मास में उस पाटन नगर के पास पहुंचा, संध्या होने लगी थी, नगर थोड़ी दूर पर था। वहां एक कुटी में भील और भीलनी रहते थे, राजा को देखकर भीलनी बोली–आओ राजा भोज! तुम यहां कहां? राजा यह सुनकर आश्चर्य में भरकर बोला–हे स्त्री! इस ग्राम में न तो मेरा राज्य है और न मैं कभी यहां आया हूँ, तब मुझे किस प्रकार पहचाना! भीलनी ने कहा- पतिव्रतापन के प्रताप से कुछ समय के बाद भीलनी ने भोज से कहा कि अब रात्रि होने वाली है, उसके बारे में क्या सोचा! इस वन में जीवों का भय अधिक है। अंधकार होने पर व्याघ्र, सिंहादि निकल पड़ते हैं। आज की रात्रि तो यहां ही ठहर जाओ।

राजा ने भी स्वीकार कर लिया। भीलनी ने राजा को भोजन कराने के पश्चात् कहा–इस कुटी के बाहर जो तुम सोओगे तो सिंह तुम्हें और तुम्हारे घोड़े को खा जायेगा। अतएव तुम कुटीर के भीतर सो जाना, मेरा पति धनुष लेकर रात भर तुम्हारे घोड़े की रक्षा करता रहेगा।

राजा और भीलनी कुटी के भीतर सो रहे थे, भील धनुषबाण लिये घोड़े की रक्षा में बाहर बैठा था। यह भील सदा एक दो सिंहों अथवा उनके बच्चों का शिकार किया करता था। उसे रात्रि के समय बैठा देखकर सिंह उसके आस पास इकट्ठे हुए, परन्तु भील के हाथ में शस्त्र देखकर दूर-दूर ही विचरते रहे।

जब आधी रात हुई, तब भील को नींद का झोंका आया और धनुषबाण उसके हाथ से नीचे गिर पड़ा। तब सिंह तेज झपट्टे से उसके ऊपर आ चढ़ा और उसे वहां से दूर ले जाकर मार डाला। यह जानकर भीलनी चिल्ला पड़ी कि राजा! उठो! मेरे पति को सिंह ने मार डाला।

राजा शस्त्र सँभाल कर उठकर देखते हैं तो सिंह भील को खा रहे हैं। प्रातःकाल होने पर भीलनी बोली–अब मैं सती होती हूँ, इसलिए वन में लकड़ी इकट्ठी करके मेरे लिए चिता बना दो।

राजा ने बड़ी दीनता से समझाया--हे स्त्री! अब मेरे पास समय थोड़ा है मुझे जाने दो।

भीलनी ने कहा–राजा! तुम्हें काम है मैं जानती हूं, परन्तु यदि तुम मेरा कहना नहीं मानोगे तो मैं तुम्हें शाप दूंगी।

राजा सोचने लगा कि एक ओर से हिंसा होती है और दूसरी ओर से शाप लगता है, फिर सोचा कि हिंसा लगती है तो लगेगी। परन्तु इसका शाप तो तत्काल ही लगेगा।

राजा ने लकड़ी एकत्र की, चिता बनाकर कहा–अब मुझे आज्ञा है। भीलनी ने दृढ़ता से कहा–नहीं, अभी तुम नहीं जा सकोगे, तीन दिन तक मेरी चिता जलने दो, पश्चात् चौथे दिन प्रातःकाल उठकर तुम्हें जहां जाना हो, वह जाना।

राजा ने बहाना किया कि यह तो सब ठीक है, परंतु रात्रि को सिंह आक मुझे और मेरे घोड़े को खा जायँगे।

भीलनी ने उत्तर दिया कि रात्रि के समय मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी। राज निरुपाय हुआ। फिर भीलनी चिता के ऊपर बैठी और राजा ने उसे प्रज्ज्वलि किया। चिता चारों ओर से जल रही थी, भीतर भीलनी आनंद से बैठी थी इस प्रकार संपूर्ण दिन भीलनी को बिना जलाए अग्नि को देखकर राजा को आश्चर्य हुआ और रात्रि होने पर कुटी का दरवाजा बंद करके तब वह भीतर बैठ गया। परंतु छेद में से देखा कि भीलनी हाथ में धनुषबाण लिये पहरा दे रही है। इसे देखकर राजा को और भी आश्चर्य हुआ।

इस प्रकार तीन दिन और तीन रात आश्चर्यजनक यह घटना राजा को देखने में आयी। सती का सतीत्व देखकर राजा को हुआ कि तीन दिन तक अग्नि में बैठकर जिस भीलनी को किंचित् भी अग्नि न जला सकी उस भीलनी को चौथे दिन के प्रथम पहर में आग ने जलाना शुरू किया। थोड़ी देर में वह जलकर भस्म हो गयी। राजा ने चिता के ऊपर पानी डालकर और कुटी को ताला लगा दिया। कुञ्जी ऊपर रख दिया और वहीं ही राजा अपने वस्त्रादि

उतार और भस्म लगाकर बाबाजी बन गया। राजा को महान् योगी जानकर लोग उसका सम्मान करने लगे। इतने में नगरसेठ के सेवक की उसके ऊपर दृष्टि पड़ी। सेवक ने पूछा–महाराज योगिराज! हमारे सेठ इस ग्राम के नगरसेठ हैं, उनको वृद्धावस्था में तीन दिन पहले ही पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है, परंतु वह बालक तीन दिन से दूध नहीं पीता। हमारे सेठ ने सब उपाय किये परंतु कुछ लाभ नहीं हुआ। अब आप वहां चलिये और हो सके तो कुछ उपाय करिये।

योगीरूप राजा ने कहा–उपाय तो मैं जानता हूं, परन्तु परिश्रम का एक लक्ष रुपया लूंगा।

सेवक ने कहा–महाराज! एक लक्ष तो बहुत होता है, कुछ कम ले लो।

राजा ने पूछा–तेरे सेठ की क्या देने की इच्छा है?

सेवक ने कहा–योगिराज! हमारा सेठ तो तीस हजार रुपये देगा। राजा ने कहा–मैं चालीस हजार लूँगा, इससे कम नहीं लूंगा।

बहुत बातचीत के बाद चालीस हजार रुपये पर मामला तय हुआ और राजा को वह सेवक अपने सेठ के पास ले गया और उत्तम स्थान पर बैठाया। बाद में सेठ ने कहा–महाराज! मेरा पुत्र दूध नहीं पीता, इसका उपाय कर दोगे?

राजा ने कहा–कर देंगे।

राजा की हां सुनकर सेठ ने सेवक से पूछा योगिराज तुम्हें कहां मिले थे और इनसे क्या बात हुई है?

सेवक ने कहा–मैं काम से बाहर जा रहा था, ये मुझे मार्ग में मिल गये। मैंने इन्हे देखकर सोचा कि इनसे अपना काम शायद हो जाये, महापुरुष जानकर मैंने इनसे कहा कि हमारे सेठ को तीन दिन पहले पुत्र हुआ है, पर वह दूध नहीं पीता है, उसका उपाय कर सकोगे? इनकी हां सुनकर मैं इन्हें आपके पास ले आया हूँ। पुत्र के अच्छे होने पर इनको चालीस हजार रुपया देना होगा।

सेठ ने राजा की ओर देखकर कहा–महाराज! मेरे पुत्र को अच्छा कर दोगे, तो आपको चालीस के बदले पचास हजार रुपये दूंगा।

बाबाजी ने कहा–मुझे तुम्हारे पास से रुपये लेकर रखना नहीं है, उसी दिन ब्राह्मणों को भोजन देकर उन्हें समाप्त कर दूंगा। अब आप अपने पुत्र को एकांत कोठरी में ले चलो और मैं भी चलता हूं। धाय उस लड़के को कोठरी में ले गयी। बाबाजी ने सबको बाहर निकालकर द्वार बंद कर दिया। द्वार बंद होते ही वह लड़का बोल उठा कि रे दुष्ट राजा! आज तीन दिन हुए मेरे खाने पीने की भी कुछ परवाह किया?

राजा ने वन में घटी सारी घटना को सविस्तार कहकर उससे क्षमा मांगी और कहा कि अब मुझसे वह सब वृत्तान्त कहो।

लड़के ने उत्तर दिया—हे भले आदमी! कुछ तो विचार कर, आज तीन दिन हुए मैं भूख से व्याकुल हूं, पहले मेरे दूध पीने का प्रबन्ध कर।

राजा ने स्वीकार करके द्वार खोला, नगरसेठ तथा धाय को बुलाकर कहा जाओ, इसे इसकी माता को दे दो। देखो, यह दूध पीता है कि नहीं?

लड़के को ले जाकर माता को दिया, माता ने उसे सीने लगाया तो वह दूध पीने लगा। सेठ ने अपने पुत्र को इस प्रकार दूध पीता हुआ देखा तो उसे अपार हर्ष हुआ। योगी के चरणों में बार बार पड़ने लगा। उसे वृद्धावस्था में पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई थी, दूध न पीने से उसे बड़ा दुःख हो रहा था, जब वह दूध पीने लगा। तब नगरसेठ के हर्ष का पारावार न रहा?

सेठ की आज्ञानुसार राजा को सेठ के आदमियों ने उष्ण जल से भली प्रकार स्नान कराया और शरीर पर चन्दनादि सुगन्धित पदार्थ लगाये पीताम्बर वस्त्र पहनाये। सेठ और उसके घर के सभी लोगों ने राजा को ईश्वर के सदृश मान दिया। सुवर्ण पात्रों में भोजन कराकर इलायची पान आदि पदार्थ सामने रखे। सेठ सन्मुख हाथ जोड़कर बैठा। सेठ ने योगिराज का नाम-धाम पूछा। राजा ने बताया—मुझे परमानन्द कहते हैं और मैं उज्जयिनी का रहनेवाला हूं। विशेष बात यह है कि जहां रात्रि हो जाती है, वहीं रह जाता हूं। इस प्रकार योगी उस सेठ के घर १५ दिनों तक रहा। पन्द्रहवें दिन उस लकड़े ने फिर दूध नहीं पिया, तो धाय उस लड़के को योगी के पास ले आयी। राजा ने सब मनुष्यों को बाहर निकालकर द्वार बंद कर धीरे-धीरे लड़के से पूछा—यों फिर दूध पीना क्यों बंद हो गया?

लड़के ने उत्तर दिया—राजन्! मैं तो ऐसा करके तुम्हारी प्रतिष्ठा बढ़ा रहा हूँ।

राजा ने फिर कहा—यह तो सब ठीक है, पर अब बात कह।

लड़के ने कहा—मेरे दूध पीते रहने पर जब तुम्हारे पास लायँगे, तब तुम्हारी बात कहूंगा, अब तो मेरे दूध पीने का उपाय करो।

राजा ने धाय को बुलाकर लड़के को दे दिया। फिर लड़के ने दूध पिया, सेठ अत्यंत हर्षित हो गया। पश्चात् लड़का ३६ दिन तक अच्छा रहा, पीछे उसको राजा के पास लाये। सब लोगों के बाहर जने पर लड़के ने कहा—राजा! अब तुम चालीस हजार रुपये लेकर यहां से जाओ, मेरी आयु पूर्ण होती है।

राजा ने कहा—तु मुझसे वह बात कहता था सो कह।

उसने उत्तर दिया—इस समय वह बात नहीं कहूंगा, परन्तु आज से चौथे

दिन प्रातःकाल मैं मर जाऊंगा, उस समय मुझे इस ग्राम के श्मशान में गाड़ देंगे, वहां तुम आना। गाड़नेवालों के जाने पर तुम मुझे गड्ढे में से निकाल लेना, तब मैं तुमसे सब वृत्तान्त कहूँगा।

राजा ने लड़का धाय को सौंपा, वह फिर पहले की तरह दूध पीने लगा, दूसरे दिन उठते ही राजा ने कहा—अब अधिक समय मैं नहीं रह सकता। मेरी दक्षिणा दो। मैं ब्राह्मणों को भोजन कराकर अन्य देश को जाऊं।

सेठ ने उत्तर दिया—महाराज! आज के दिन कुछ बन नहीं रहा। आप कल ब्राह्मण को जिमाकर, परसों जाना।

राजा ने कहा—ठीक है, यह उत्तर देकर दूसरे दिन ब्राह्मण जिमाने की सम्पूर्ण तैयारी करायी, सब रुपया उसमें खर्च कर दिया और ब्राह्मण जिमाकर उत्तम दक्षिणा दी, उनके पास आये हुए सभी रुपये खर्च कर दिये, यह देखकर सेठ के मन में दृढ़ विश्वास हुआ कि ये योगीराज मेरे कोई पूर्वजन्म के पुण्य से ही मिले हैं।

राजा जानता था कि कल को तो लड़का मर ही जाएगा। इसलिए उसी दिन सेठ से विदा ले ली। अनेक बार कहने पर भी वह किसी प्रकार भी न रुका। राजा को दो कोश तक सेठ और उनके सेवक पहुंचाने आये। सेठ ने और सब मनुष्यों ने लौटते समय राजा के चरणों का स्पर्श किया और सेठ ने कहा—महाराज! आप पधारे तो मेरा पुत्र जीवित रहा, नहीं तो कैसे रहता।

राजा सबको आशीर्वाद देकर आगे बढ़ चला। सबके जाने पर राजा ने अपना योगी का वेष बदलकर वहीं साधारण वस्त्र धारण कर लिये और पीछे से उसी नगर में आकर एक कुम्हारिन के यहां ठहरा। दूसरे दिन वह कुम्हारिन प्रातःकाल बाहर जानेवाली थी, उसने राजा को एक हांड़ी देकर कहा—इसमें तुम खिचड़ी बनाकर भोजन कर लो, मैं थोड़ी देर में आती हूँ।

राजा ने पूछा—हे कुम्हारिन! तू कहां जाती है?

कुम्हारिन ने कहा—हमारे ग्राम के नगरसेठ का पुत्र मर गया है, वहां सम्पूर्ण ग्राम के लोग गये हैं, मैं भी जाती हूं।

यह कहकर कुम्हारिन तो चली गयी पर राजा अपने कपड़ों की गठरी बांध कर भूमि खोदने के लिये फावड़ा लेकर एक ओर श्मशान में जा बैठा। उस लड़के को श्मशान में गाड़कर लोग लौट पड़े, तब राजा ने गड्ढे में डाली हुई मिट्टी को खोदकर लड़के को बाहर निकाल लिया। लड़के ने राजा को देखकर कहा—तुम्हें यदि यह बात अधूरी सुननी हो तो सुनो और पूरी सुननी हो तो यहां से छह दिन तक चलने पर कनकपुर नामक नगर है, वहां एक भंगन

रहती है, वह तुमसे सम्पूर्ण बात कहेगी। इससे मुझे गड्ढे में रखकर ऊपर मिट्टी डालकर जाओ। यह सुनकर राजा ने फिर उसे गड्ढे में गाड़ दिया औ कनकपुर की ओर चल दिया। चलते चलते कनकपुर आ पहुँचा। उस भंगन क किस प्रकार ढूंढे यह विचार कर ही रहा गया कि इतने में एक भंगन सामने आती हुई दिखायी दी। भंगन ने आकर कहा—क्यों राजा भोज! तुम अ गये!

राजा ने आश्चर्यचकित होकर कहा—तू कौन है, मैं तुझे नहीं जानता, तू मु कैसे जानती है?

भंगन ने कहा—उस लड़के ने तुम्हें जिसके पास भेजा है, मैं वही हूं।

राजा ने कहा—यदि तू वही है, तो मुझसे वे सारी बातें कह।

भंगन ने उत्तर दिया—तुम चलकर आ रहे हो, थोड़ा विश्राम करके फि वह बात पूछना।

राजा ने कहा—तेरे यहां मैं कैसे ठहरूं?

भंगन बोली—मैं तो इस गांवकी भंगन हूं, इससे दीवानके यहां चलो, मैं वह तुम्हारे खाने पीने का भी प्रबन्ध करवा दूंगी।

यह कहकर भंगन आगे-आगे चली। राजा घोड़े पर सवार होकर उसवे पीछे-पीछे दीवानके यहां गया। दीवान अपने दरवाजेमें ही खड़ा था। दीवान आगे हाथ जोड़कर भंगनने कहा—माता-पिता! यह सेठ मेरे अतिथि हैं। इन उत्तम भोजन कराओ और आज की रात इनको तुम्हारे यहां ही ठहराती हूं।

दीवान ने राजा की मुखमुद्रा देखकर किसी उत्तम कुल का जानकर कहा— स्त्री! तेरे अतिथि सो मेरे अतिथि, स्त्री से यह कह दीवान राजा को हा पकड़ कर अंदर ले गया।

दीवान ने नवीन अतिथि को भोजन कराया। फिर रात्रि होने पर फि भोजन के लिये बिठाया। दीवान का पुत्र पिता के पास बैठा था, उसने अप पिता के कान में कहा—पिताजी! इस मनुष्य को तुम केवल भंगन का अतिथि नहीं मानना, यह तो कोई राजवंशी मालूम होता है।

दीवान ने कहा—हे पुत्र! तूने कैसे जाना? दीवान के पुत्र ने उत्तर दिया कि वह दीपक के समान बैठा है और दीपक के प्रकाश से इसका मस्तक दीपक की भांति चमक रहा है। दीवान ने कहा—हमें इससे क्या प्रयोजन?

राजा भोजन के पश्चात् तांबूलादि खाकर बातचीत करने बैठा। निद्रा क समय हुआ और राजा के लिये सोने का प्रबन्ध किया गया। राजा उस रात्रि निश्चिंत होकर सो रहा।

दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर नित्यक्रिया से निवृत्त होकर राजा ने राजवंशी

वस्त्रादिक धारण किये, वह देखकर पुत्र ने पिता से कहा--देखो पिताजी! रात जो बात मैंने तुझसे कही थी, वह ठीक है या नहीं?

दीवान ने राजा की ओर देखकर सोचा कि यह तो राजा भोज की तरह दीखता है। फिर राजा की ओर मुड़कर पूछा–हे राजा! आप कहां पधारेंगे।

राजा भोज ने उत्तर दिया–तुम्हारा नगर देखने जाता हूं। राजा घोड़े पर सवार होकर भंगन के घर की ओर चला। भंगन ने राजा को आता देखकर अपने स्वामी से कहा–देखो! वह राजा भोज आता है, उसके बैठने को आसन लाओ, यह कहकर भंगन घर के भीतर गयी और कुर्सी लाकर भोज को बैठाया। कुछ समय पीछे भंगन भी राजा के सम्मुख बैठी और बोली–राजा! जो कहती हूं ध्यान से सुनो।

(राजा भोज के पूर्व जन्म का वृत्तांत भंगन कहती है और राजा सुनता है)

हे राजा! पूर्वजन्म में तुम लकड़हारे (लकड़ी बेचनेवाले) थे। मैं तुम्हारी स्त्री थी। किसान का लड़का जो मर गया, वह आपका पुत्र था और कालिदास की विधवा वधू तुम्हारी पुत्रवधू थी। तुम दोनों पिता और पुत्र मजदूरी करके हम चारों का उदर पोषण करते थे। इतने में बारह वर्ष का महादुर्भिक्ष पड़ा। तब कठिनता से हमारी आजीविका चलती थी। दुर्भिक्ष के दस वर्ष तो बीत गये। एक दिन हम चारों एक रोटी लेकर खाते थे, उस समय एक यती मांगने आया। उसको क्षुधा से अत्यन्त व्याकुल देखकर तुम्हें दया आयी, तुमने अपनी रोटी में से आधी रोटी उसको दे दी। वह रोटी खाकर बोला–कि मैं दस दिन का भूखा हूं, इस कारण यदि तेरी शक्ति हो तो कुछ और दे। तब तुमने पुत्र की रोटी में से आधी रोटी और दे दी। उसने फिर भी मांगा, तुमने पुत्रवधू की रोटी का आधा भाग दे दिया। पश्चात् मेरी रोटी से भी आधा भाग दे देंगे, यह मैं जान गयी और अपनी रोटी लेकर दूर चली गयी। वधू की आधी रोटी खाकर यती ने फिर मांगा तब तुमने अपनी शेष रही रोटी भी दे दी। पुत्र और वधू ने विचारा कि हमारी शेष रोटी यह दे देंगे। इससे वे भी दूर भाग गये। मैं सब रोटी खा गयी और पुत्र तथा वधू भी आधी-आधी रोटी खा गये।

अब और नहीं मिलेगी, यह जानकर यती चला गया। फिर कुछ समय तक मजदूरी न मिलने के कारण भोजन न मिल सका, जिससे हम सब दुर्बल हो गये और अन्त में अन्न न मिलने के कारण मर गये। हे राजा! तुमने उस भूखे यती को सब रोटी दे दी थी। इससे तुम राजा हुए और सम्पूर्ण मनुष्य जन्म का सुख भोगा। तुम्हारा पुत्र, जिसने आधी रोटी थी उसने आधा सुख भोगा अर्थात् वह

बीस वर्ष की अवस्था में ही मर गया। पुत्रवधू, जो कालिदास की पुत्रव
कहलाती है, वह भी युवावस्था में विधवा हो गयी और मैंने सर्व प्रकार से पे
को ही उत्तम समझा था, इसलिए मैं चाण्डाल योनि में पैदा हुई और सम्पू
भव का दुःख देखा।

यह सुनकर भोज ने पश्चात्ताप किया। खैर जो होनहार था सो हुआ, अ
उस भङ्गन को सुखी करना चाहिए, यह विचारकर भङ्गन की ओर मुड़क
बोला—हे स्त्री! अब तू और तेरा स्वामी दोनों मेरे नगर को चलो, वहां
तुमको एक घर दूंगा, उसमें सुख से रहना। भङ्गन ने पहले तो स्वीकार नह
किया, फिर बाद में अपने स्वामी से पूछकर स्वीकार किया। राजा उ
धारानगरी में ले आया और कालिदास की विधवा वधू से पूछा—हे पुत्री
हमारे पूर्व जन्म का वृत्तान्त तीन लोगों को ज्ञात था और मुझे मालूम नहीं थ
कि इसका क्या कारण है?

वधू ने उत्तर दिया—हमें पूर्वजन्म की याद है, इसका कारण यही है कि उ
सुनाकर इस जन्म में हम सब भली भांति रहें।

प्रिय पाठकगण! देखो दान का फल कितना उत्तम होता है। जो भलीभां
दान देते हैं, उनको सर्वोत्कृष्ट पद प्राप्त होता है।

कला १९
(सरस्वती कुटुम्ब)

अमरावती नगरी में एक बड़ा विद्वान् और अत्यन्त धनहीन सरस्वत
कुटुम्ब रहता था, इस कुटुम्ब में चार व्यक्ति थे। एक ज्योतिषी, दूसरी उसक
स्त्री, तीसरा पुत्र और चौथी पुत्रवधू। स्वदेश में उदर पोषण न होने से उस
अन्य देश में जाने का विचार किया। राजा भोज की कीर्ति उसने सुन रखी थ
कि राजा भोज विद्याशोधक है और विद्वानों को आश्रय देता है। अतएव व
धनहीन कुटुम्ब उससे मिलने चला और चलते-चलते वह धारानगरी के समी
पहुँचा; नगर के निकट एक ब्राह्मण मिला उसने पूछा ज्योतिषीजी कहां जा
हो?

उसने उत्तर दिया—

श्लोकपूर्वार्ध—"गच्छाम्यहं श्रुतिपुराणसमग्र-
शास्त्रपारंगतं कलयितुं किल भोजभूपम् ।"

अर्थात्—श्रुति पुराण और सम्पूर्ण शास्त्र युक्त भोज राजा से मिलने क
जाता हूं।

ज्योतिषी का यह शब्द सुनकर वह ब्राह्मण बोला–

श्लोकउत्तरार्ध–"वेत्त्यक्षराणि नहि वाचयितुं स
राजा मह्यं ललाटलिखितादधिकं ददौ यः ।।१।।"

अर्थात्–अरे! भोज राजा तो एक अक्षर भी स्पष्ट नहीं पढ़ सकता। मेरे भाग्य में जो लिखा था उससे यह अधिक द्रव्य उसने मुझे दिया है। यहां 'ब्याज स्तुति' अलंकार है अर्थात् ब्रह्मा के लिखने से भी अधिक दिया, इसलिए ऐसा दान वीर कौन है?

वह ब्राह्मण इतना कहकर चला गया, इसे सुनकर ज्योतिषी और उसका कुटुंब आनन्द से भर उठे। उन्हें लगा कि धारानगरीमें हमारा भली-भांति सत्कार होगा। धारानगरी के पास एक सुन्दर वट वृक्ष के नीचे ठहरकर राजा से पूछने को आदमी भेजा कि एक सरस्वतीकुटुंब तुम्हारे नगर की सीमा पर आया है, आपकी आज्ञा हो तो नगर में आये।

सरस्वती-कुटुंब नाम सुनते ही राजा ने सोचा कि नाम तो सरस्वती कुटुंब है, परंतु है वह कितना चतुर, इसकी परीक्षा तो करूं?

राजा ने दूध का एक लोटा ऊपर तक भरकर अपने विश्वासी आदमी के हाथ भेजा, वह आदमी सरस्वती-कुटुंब के पास गया और ज्योतिषी के हाथ में लोटा देकर कहा–राजा भोज ने इसे तुम्हारे लिये भेजा है। सरस्वती-कुटुंब राजा की चतुराई जान गया। राजा का यह तात्पर्य था कि, जिस प्रकार यह लोटा दूध से भरा हुआ है और इसमें अब कुछ भी नहीं आ सकता, उसी प्रकार हमारा नगर भी पूरी तरह भरा हुआ है। राजा का प्रयोजन समझकर ज्योतिषी ने उसी दूध में खांड डाल दी और जो मनुष्य दूध का लोटा लेकर आया था, उसी मनुष्य को दूध से भरा लोटा वापस देकर लौटा दिया। ज्योतिषी खांड डालकर यह उत्तर दिया था कि जिस प्रकार इस दूध में खांड समा गयी, वैसे ही हम भी प्रजा को किसी तरह का कष्ट पहुंचाये बिना इस नगर में समा जायेंगे।

राजा से जाकर उस आदमी ने सब बात कही। यह सुनकर राजा को विश्वास हो गया कि नाम के अनुसार ही यह सरस्वती–कुटुंब चतुर भी है। दूसरी और कोई परीक्षा करनी चाहिए, इस इरादे से राजा वेष बदलकर सरस्वती कुटुंब के पास आया। वहां दो स्त्रियां थी, उन्होंने बताया कि ज्योतिषी और उनका पुत्र तालाब पर संध्या करने गये हैं। यह सुनकर वह तालाब पर गया। पुत्र की ओर देखकर राजा ने अंजुली भर जलपान किया। राजा ने यह दिखाया कि तुम ब्राह्मण हो और तुम्हारे मान्य अगस्त्य ऋषि ने एक आचमन से संपूर्ण समुद्र का पान किया था, यदि तुम इतने छोटे से ही

तालाब का ही पान करो, तो तुमको उत्तम ब्राह्मण मानूं।

वह तत्काल राजा का उद्देश्य समझ गया। लड़के ने पत्थर के एक छोटी कंकरी तालाब में फेंकी, यह देखकर राजा हर्षित हुआ और घर को चला ग कंकरी फेंक कर राजा को लड़के ने यह बात बतलायी कि तुम क्षत्रिय हो अं तुम्हारे मान्य रामचन्द्र भी क्षत्रिय ही थे, उन्होंने समुद्र में पत्थर की शि तैरा दी थी और तुम ऐसी छोटी कंकरी को तैरा सको तो तुम्हें उत्तम क्षि मानूं।

राजा के मन में यह विचार आया कि, जैसा यह ब्राह्मण है, वैसा ही क्षत्रिय हूं, यह सोचकर वह हर्षित होकर वहां से चला गया। परंतु महल में उ चैन नहीं पड़ी। सरस्वती–कुटुंब के साथ वार्तालाप करने की उसकी इच्छा हु राजा तत्काल लकड़हारे का वेष धारण कर सरस्वती-कुटुंब के पास गय नगर के द्वार बंद होने का समय हो गया था। राजा ने उसके पास आकर क वन में लकड़ी काटता रह गया, अब इस नगर के द्वार बंद हो गये, लक तुम्हारे पास बिक जायेगी, इस आशा से यहां आया हूँ, इसे ले लो तो बड़ी कृ होगी।

लकड़हारे के ये शब्द सुनकर उन्होंने लकड़ी मोल ले ली और पैसे दे दि लेकर लकड़हारा वेषधारी राजा ने कहा–ब्रह्मदेव अब मेरे नगर का द्वार ब हो गया है, यदि आज्ञा दो तो मैं भी एक ओर यहीं पड़ा रहूँ।

ज्योतिषी ने कहा–भाई निवास करो, हमें इसमें क्या एतराज हो सक है? राजा वहां ही सोने लगा। उन चारों ने विचार किया कि हम एक ए प्रहर तक नहीं जागेंगे, तो जंगल में हमें कोई लूट लेगा।

ज्योतिषी वृद्ध था इस कारण उसका प्रथम प्रहर नियत हुआ। ज्योतिष जागता रहा और अन्य तीनों सोने लगे।

राजा ने ज्योतिषी की परीक्षा लेने के लिये कहा।

श्लोकपूर्वाध–"असारे खलु
संसारे सारमेतत्रयं स्मृतम् ।"

अर्थात्–इस असार संसार में तीन वस्तु सार हैं। यह सुन ज्योतिषी ने उत्त दिया कि–

श्लोकोत्तरार्ध–"काश्यां वासः सतां सेवा
मुरारेः स्मरणं तथा ॥१॥"

अर्थात्–काशी का वास, संतों की सेवा और ईश्वर का स्मरण। यह सुनक राजा अत्यन्त हर्षित हुआ। एक प्रहर व्यतीत हो गया और उसकी स्त्री जागने की बारी आयी और वह जागने लगी। सब सो गये, फिर राजा

कहा–

श्लोकपूर्वार्ध–"असारे खलु संसारे
सारमेतद् द्वयं स्मृतम् ।।"

अर्थात्–इस असार संसार में दो ही वस्तुएं सार हैं।

उस स्त्री ने तुरंत उत्तर दिया–

श्लोकोत्तरार्ध–"कसारः शर्करायुक्तः
कंसारिचरणद्वयम् ।।१।।"

अर्थात्–एक तो बूरायुक्त कसार और कंश के शत्रु के दोनों चरणारविंद। यह सुनकर राजा अत्यन्त हर्षित हुआ और दूसरा प्रहर पूर्ण होने पर तीसरा प्रहर आरंभ हुआ। और पुत्र की बारी आयी राजा फिर बोला–

श्लोकपूर्वार्ध–"असारे खलु संसारे
सारं श्वशुरमन्दिरम् ।।"

अर्थात्–इस असार संसार में केवल श्वशुर का मंदिर ही सार है। यह सुनकर उसने उत्तर दिया–

श्लोकोत्तरार्ध–"हरः शेते हिमगिरौ
हरिः शेते पयोनिधौ ।।१।।"

अर्थात्–दोहार्ध–"हिम पर्वत पर हर बसे, रत्नाकर हरिवास" हर अर्थात् शंकर हिमालय (श्वशुर गृह के आंगन) में और हरि अर्थात् विष्णु क्षीरसमुद्र में (श्वशुर के यहां) सोते हैं। (विष्णु लक्ष्मी के पति हैं और समुद्र लक्ष्मी का पिता है)।

यह सुनकर राजा भोज बहुत ही प्रसन्न हुआ। इस प्रकार रात्रि के तीन प्रहर बीत गये और पुत्र सो गया। अब उसकी स्त्री के जागने की बारी आयी। ब्राह्मण पुत्र के सोने पर पुत्रवधू से कहा–

श्लोकपूर्वार्ध–"असारे खलु संसारे
सारं सारंगलोचना ।।"

अर्थात्–इस असार संसार में एक मृगनयनी स्त्री ही सार है। यह शब्द सुनकर पुत्रवधू जो अत्यन्त चतुर थी वह समझ गयी कि लकड़हारा नहीं है, यह तो निश्चय ही राजा भोज है। यह विचार कर वह बोली:–

श्लोकउत्तरार्ध–"यस्याः कुक्षौ समुत्पन्नो
भोजराज भवादृशः ।।१।।

अर्थात्–सारंगलोचना सार क्यों न हो, हे राजा भोज! जिसकी कुक्षि से आपके समान भाग्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ हो।

"ब्राह्मण–पुत्रवधू ने पहचान लिया" यह जानकर राजा भोज वहां से द्वार

खुलते ही चल पड़ा। फिर बड़ी धूमधाम से सरस्वती–कुटुंब को नगर में बुलाया और उसका भली भांति आदर–सत्कार कर निवास के लिए उत्तम स्थान दिया और उसके लिए मासिक नियत कर दिया।

कला २०
(कपट संन्यास)

राजा भोज की सभा में चौदह सौ पंडित थे। उनमें से कालिदास सबसे श्रेष्ठ था। इस कारण राजा कालिदास पर अधिक प्रेम रखता था। उन पंडितों के कुछ पुत्र अधिक विद्वान थे, परन्तु कालिदास की विद्वत्ता के सामने उनकी प्रतिष्ठा अधिक नहीं थी। इसलिये वे निरन्तर मन ही मन कालिदास से जलते थे। एक दिन उन सभी ने एकत्रित होकर विचार किया कि कालिदास के सामने हमारी प्रतिष्ठा नहीं है, तो हमारे परिश्रम का क्या फल है? इसलिए कोई उपाय करके कालिदास को धारा नगरी से निकलवा दें, तो हमारी प्रतिष्ठा होगी और संसार में प्रसिद्ध भी हो जायेंगे ऐसा कोई उपाय ढूँढ़ना चाहिये।

एक पंडित बोला–हम सब मिलकर चौदह सौ पंडित कहलाते हैं, इनमें कितने ही वृद्ध हो गये हैं, उन वृद्धों को समझाओ कि तुम कालिदास को साथ लेकर काशी में जाकर संन्यास ले लो। इससे उन वृद्धों का भी कल्याण होगा और यहां से कालिदास के जाने पर अपना कार्य भी सिद्ध होगा।

यह उपाय सबको पसंद आया। उन्होंने वृद्ध पंडितों से अपनी यह युक्ति कही उन्होंने स्वीकार किया। उन सबने सोचा कि यदि हम कालिदास को साथ ले जाकर यहां से काशी में संन्यास ले लें, जिससे हमारी देह का कल्याण होगा और हमारे पुत्रों का कार्य भी सिद्ध हो जायेगा। उनमें से दस पंडित मिलकर कालिदास के पास गये और वेदांत के विषय की चर्चा करने लगे और कहने लगे कि हम बहुत विचार कर आपके पास आये हैं। इस अनित्य संसार में रहकर व्यर्थ दिन व्यतीत करने से अच्छा है कि सब मिलकर काशी चलें और वहां जाकर मुक्ति का रास्ता निकालें। अब आपका क्या विचार है, सो कहो। यदि तुम्हारी भी सम्मति हो, तो महाराज की आज्ञा लेकर हम सब चलें।

उनके अन्तरंग कपट को कालिदास अच्छी तरह जान गया। परंतु अपने मन की बात गुप्त रखी और बाहर से अत्यन्त हर्ष प्रकट कर उसे स्वीकार किया।

फिर सब पंडित राजा के पास गये। राजा से अपने मन की बात कही। राजा आनन्दपूर्वक बोला–बड़े हर्ष की बात है कि आप लोगों ने अच्छा विचार किया है आपको यह करना ही चाहिये और आपके पुत्र आपके स्थान पर सभा

का कार्य्र कर ही लेंगे, इसलिये आप लोग अवश्य काशी वास के लिये जाइये।

यह सुनकर पंडित प्रसन्न होकर अपने-अपने घर गये। कुछ समय बाद जाने की तैयारी की। जाने के एक दिन पहले कालिदास के पास आये और कल चलना है बतलाया। कालिदास ने उत्तर दिया कि मैं भी तैयार हूं और उनके चले जाने पर अपने मन में सोचा-'कुछ चिन्ता नहीं, उन्होंने मुझे फंसाने की उपाय तो ठीक किया है, यदि मैं न जाऊँ तो इनका मेरे ऊपर कुछ जोर तो है नहीं, परन्तु मैं इनके साथ जाकर वहां इन्हें ही फंसाकर चला आऊंगा।

दूसरे दिन सब इकट्ठे होकर चल दिये। कुछ समय बाद काशी पहुंचे। वहां नृसिंह भारती नामक महा-पुरुष के आगे हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले-महाराज! कृपा करके हमारी विनय सुनोः-

श्लोक-अत्रत्यपापमपि पुण्यसमं मदीय-
मत्रत्यदुःखमपि सर्वसुखास्पदं मे।
अत्रत्यवृत्तिरपि वैषयिकी समाधिः
श्रीमन्नृसिंहगुरुदर्शनपूर्णलाभात् ।।१।।"

अर्थात्-हमको श्रीमान् नृसिंह गुरु के दर्शन का लाभ हुआ है, इस कारण हम सुख दुःख तथा पाप-पुण्य को समान समझते हैं और अब समाधि में निमग्न रहकर निरन्तर वास करने की इच्छा है।

यह सुनकर नृसिंहाचार्य ने पूछा-तुम्हारा अभिप्राय क्या है, स्पष्ट कहो? पंडितों ने कहा-आप हमें संन्यास देकर अपना शिष्य कर लें।

गुरु ने कहा-तुम्हारी इच्छा है तो जरूर करूंगा, परन्तु एक ही दिन सबको संन्यास नहीं दे सकता, इसलिए क्रम से एक एक को संन्यास दूंगा। कल प्रातःकाल से एक-एक करके आओ, तो उसकी इच्छा जानकर संन्यास दूं।

गुरु को नमस्कार कर ठहरने के स्थान पर सब लौटकर चले आये और प्रथम संन्यास कौन लेगा विचार करने लगे। पंडितों ने अपना उद्देश्य सिद्ध करने के प्रयोजन से प्रथम कालिदास को संन्यास लेना होगा, ऐसा निर्णय किया। एक पंडित बोला-हम सबमें कालिदास श्रेष्ठ हैं, इससे ये ही प्रथम संन्यास लें। यह सुनकर दूसरे पंडित ने भी राय दी, परन्तु कालिदास ने उत्तर दिया-यह तो कदापि योग्य नहीं, तुम्हारी इच्छा से मैं आया हूं, इसलिए तुम सब संन्यास ले लोगे, तब अंत में मैं लूंगा।

पंडितों ने कहा, यह तो ठीक है, पर हमारे संन्यास लेने के बाद तुमने न लिया तो?

तब कालिदास ने अपने मन में विश्वेश्वर और काली का स्मरण करके उत्तर

दिया कि–यदि तुम्हारे संन्यास लेने पर मैं न लूं तो मेरा और मेरे पूर्वजों का एक कल्प पर्यन्त नरक में वास रहे। कालिदास के इन शब्दों पर सबको विश्वास हो गया और दूसरे दिन एक पंडित ने नृसिंह गुरु के पास जाकर संन्यास लेने की इच्छा प्रकट की और हाथ जोड़कर कहा–

"कदा वाराणस्याममरतटिनीरोधसि वसन्
बसानः कौपीनं शिरशि निदधानोऽञ्जलिपुटम् ।
अये गौरीनाथ त्रिपुरहर शम्भो त्रिनयन
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ।।"

अर्थात्–कब काशीविश्वनाथ पुरी में जाकर गंगाजी के तटपर बसूंगा और कब कौपीन पहने मस्तक पर अञ्जलि पुट स्थापन करके हे गौरीनाथ! हे त्रिपुरहर! हे शंभो! हे त्रिनयन! प्रसन्न हो इस प्रकार कहते हुए दिनों को निकालूंगा।

इस प्रकार उसके मन का विचार जानकर गुरु ने उसे संन्यास की दीक्षा दी। दूसरे दिन दूसरे पंडित ने आकर विनती की कि, मुझे संन्यास दो। उसकी इच्छा पूछने पर उसने कहा–

"कदा वृन्दारण्ये विमलयमुनातीरपुलिने, चरन्तं गोविन्दं हलधर–
सुदामादिसहितम् । अये कृष्ण स्वामिन्मदनमुरलीवादन विभो,
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ।।१।।"

अर्थात्–कब वृन्दावन में जाकर स्वच्छ यमुना के तीर पर, कामदेव को मोहित करने वाली मुरली का शब्द करते और बलभद्र सुदामादिक ग्वाल श्रीकृष्ण के साथ रहकर विचरते हुए ऐसे हे कृष्ण! हे स्वामिन! हे मुरलीधर! हे विभो! प्रसन्न हो प्रसन्न हो इस प्रकार विनती करता हुआ दिनों को बिताऊंगा।

इस पंडित को भी गुरुजी दीक्षा दे दी। तीसरे दिन तीसरा पंडित आया पूछने पर उसने यह उत्तर दिया–

"कदा वा साकेते विमलसरयूतीर पुलिने
चरन्तं श्रीरामं जनकतनया लक्ष्मणयुतम् ।
अये राम स्वामिन् जनकतनयावल्लभ विभो,
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ।।१।।"

अर्थात्–कब अयोध्या में जाकर स्वच्छ सरयू के तीर पर सीता और लक्ष्मण के साथ श्रीरामचन्द्रजी का चरित्र गानकर हे राम! हे स्वामिन्! हे जानकीवल्लभ! प्रसन्न हो प्रसन्न हो इस प्रकार कहकर दिन व्यतीत करूंगा।

उसकी इच्छा पूर्ण होने के पश्चात् चौथे दिन चौथा पंडित संन्यास लेने को आया, उसकी इच्छा पूछने पर उसने कहा—

"कदा श्रीमन्नीरानरहरिपुरे सिंहवदनं,
हरिं पश्यन्नुच्चैर्मुदितमनसा दीनदयितम् ।
अये लक्ष्मीकान्त श्रितजनभयारे नरहरे
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ।।१।।"

अर्थात्—कब नरहरिपुर में रहने वाले और सिंह के सदृश जिसका मुख है ऐसे तथा प्राणियों पर दया करने वाले नरहरि का दर्शन कर हे लक्ष्मीकान्त! हे नरहरि! प्रसन्न हो! इस प्रकार शब्द कहते हुए मेरे दिन व्यतीत होंगे।

उसको भी संन्यास देने के बाद पांचवें दिन पांचवां पंडित आया, उसकी इच्छा पूछने पर उसने उत्तर दिया।

"कदा प्रेमोद्गारैः पुलकिततनुः साश्रुनयन;
स्मरन्नुच्चैः प्रीत्याशिथिलहृदये गद्गदगिरा ।
अये श्रीमन्विष्णो रघुवर यदूत्तम नरहरे,
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ।।१।।"

अर्थात्—कब प्रेम के उद्गार से रोमांचित् नेत्रों में आंसू भरकर गद्गद स्वर से तथा प्रीतियुक्त शिथिल हृदय से हे विष्णो! हे रघुवर! यदुकुलश्रेष्ठ! हे नरहरे!! प्रसन्न हो, प्रसन्न हो, शब्द कहते हुए मेरे दिन व्यतीत होंगे।

उसकी इच्छा पूर्ण होने पर छठे दिन छठा पंडित आया, उससे पूछने पर उसने कहा—

"कदा सीताशोकत्रिशिखजलदं चाञ्जनिसुत, चिरंजीवं लोके
भजतजनसंरक्षणकरम् । अये वायोःसूनो रघुवरपदांभोजमधुप,
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ।।१।।"

अर्थात्—कब सीता के शोक की अग्नि को मेघ के समान शांत करने वाले और चिरंजीवी ऐसे अंजनी के पुत्र को वायुसुत! हे श्रीरामचन्द्रजी के चरणरूपी कमल के भंवरे! प्रसन्न हो, प्रसन्न हो, कहकर दिन व्यतीत होंगे।

उसको भी संन्यास दिया। इसी तरह दस बार में सब ने संन्यास ले लिया। अन्त में कालिदास की बारी आयी, उससे नृसिंहगुरुजी ने पूछा, बोल तेरी क्या इच्छा है? कालिदास ने उत्तर दिया—

"कदा कान्तागारे परिमलमिलत्पुष्पशयने शयानः, श्यामायाः
कुचयुगमहं वक्षसि वहन् । अये स्निग्धे मुग्धे चपलनयने चन्द्रवदने
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ।।१।।"

अर्थात्–कब ऐसा हो कि स्त्री के क्रीडाभवन में सुगंधयुक्त फूलों की शय्य पर शयन करता होऊं और पास में सोलह बर्ष की सुन्दर स्त्री सोती हो उसका स्तनयुग हृदय पर धारण करके हे प्राणप्रिये! (हे प्यारी!) हे मुग्धे (भोली भाली) हे चपलनयने! हे चन्द्रवदने । प्रसन्न हो, प्रसन्न हो इस प्रका कहकर मैं दिन व्यतीत करूं।

यह सुनकर नृसिंह यती ने कहा–तेरा चित्त अभी तक विषयवासना से तृप नहीं हुआ, तेरे मन में वैराग्य नहीं आया। तू संन्यास लेने योग्य नहीं है, इस तुझे मैं संन्यास नहीं दे सकता।

यह सुनकर कालिदास बोले–महाराज, ऐसा क्यों कहते हो? आपसे संन्या लेने की इन पंडितों के सामने मैं पहले ही शपथ ले चुका हूं उसके लिए अब क्य करूं, कोई मार्ग हो तो बताओ।

गुरु ने कहा–मैं कुछ जानता नहीं, तुझे संन्यास लेना हो तो दूसरे किसी व पास जाकर ले, कुपात्री को मैं संन्यास नहीं देता। कालिदास ने कहा– जब आ मुझे संन्यास नहीं देते, तब दूसरे के पास भी नहीं लूंगा। परन्तु मैं इन पंडितों व सामने शपथ ले चुका हूं, उसे क्या करू?

यती ने कहा–तू संन्यास लेना चाहता है और मैं नहीं देता तो इसका पा तुझे नहीं लगेगा। यह सुनकर जैसे लाचार हो गया हो, ऐसा भाव प्रकट क पहले संन्यास लिये हुए संन्यासी पंडितों की ओर मुड़कर कहा–हे यतियो! इसमें अब मेरा कोई अपराध नहीं, गुरु मुझे संन्यास नहीं देते, अतएव, यह बेकार बैठकर मुझे क्या मिलेगा? अब सबकी आज्ञा लेकर घर जाता हूं?

यह कहकर कालिदास धारानगरी की ओर चला। कुछ दिनों में धारानगरी में आ पहुंचा और काशी का सब वृत्तान्त उसने राजा भोज से कहा। राजा उसे वापस आया देखकर और सब हाल सुनकर अत्यन्त हर्षित हुआ और वे युवा पंडित कालिदास के वापस आने की खबर सुनकर बड़े खिन्न हुए। परन्तु अपने–अपने वृद्ध पिता की काशी में संन्यासी हो गये, खबर पूछने को आये। कालिदास ने उनका स्वागत करते हुए कहा, तुम्हारे पिता मुझे फँसाने ले गये थे, परन्तु स्वयं ही फंस गये। उन्होंने अपनी इच्छा से संन्यास लिया, इससे उनका कल्याण होगा। मैं इस संसार में दुःख उठाने को फिर आया हूं। आदि बातें उन्हें समझाकर शांत किया और उनके जाने के बाद अपने कार्य में लग गया।

कला २१

(कवि का कृत्य)

एक बार राजा भोज कहीं जा रहा था। एक नदी के किनारे पहुँचा, तो एक ब्राह्मण को सिर पर लकड़ी लिये आते देखा। जब वह समीप आ गया, तब राजा ने कहा–

श्लोक प्रथम च० "कियन्मात्रं जलं विप्र?"

अर्थात्–हे ब्राह्मण! जल कितना है? तब ब्राह्मण बोला–

श्लोक द्वितीय च०–"जानुदघ्नं नराधिप!"

अर्थात्–हे राजन्! घुटनों तक है।

यह सुनकर राजा चमत्कृत हुआ और फिर बोला–

श्लोक तृतीय च०–"इदृशी किमवस्था ते"

अर्थात्–तुम्हारी ऐसी अवस्था क्यों है? तब ब्राह्मण ने उत्तर दिया–

श्लोक चतुर्थ च०–"नहि सर्वे भवादृशाः"

अर्थात्–सब आपके समान नहीं हैं, अर्थात् गुणज्ञ नहीं।

तब प्रसन्न होकर राजा ने कहा–हे विद्वान्! तुम कोशाध्यक्ष के पास जाओ और एक लक्ष रुपये ले लो। तब ब्राह्मण तत्काल बोझ डालकर कोशाध्यक्ष के पास गया और कहा कि महाराज! मैं भोज का भेजा हुआ हूं, मुझे एक लक्ष रुपये दे दो।

कोशाध्यक्ष हंसने लगा और बोला–हे ब्राह्मण! तुम एक लक्ष रुपये के योग्य नहीं हो।

ब्राह्मण दुःखी होकर फिर राजा के पास गया और कहने लगा–हे राजन्! कोशाध्यक्ष ने रुपया नहीं दिया।

राजा ने फिर कहा–जाओ अब दो लक्ष रुपये मांगो, वह देगा। ब्राह्मण फिर कोशाध्यक्ष के पास आया और बोला कि अब दो लक्ष रुपया देने के लिए कहा है।

कोशाध्यक्ष फिर हंसा और कहने लगा–तुम दो लक्ष रुपयों के भी योग्य नहीं हो।

तब वह खिन्न हुआ ब्राह्मण फिर राजा के पास जाकर बताया–हे राजन्! वह मूर्ख कोशाध्यक्ष हंसता है और कहता है कि तुम दो लक्ष के भी योग्य नहीं हो।

राजा ने प्रसन्न होकर समझाया हे ब्राह्मण! अब तीन लक्ष रुपया मांगो, वह

अवश्य देगा।

ब्राह्मण फिर कोशाध्यक्ष के पास गया और कोशाध्यक्ष ने वही उत्त दिया।

तब वह ब्राह्मण अत्यन्त दुःखी होकर क्रोध में भरकर कहने लगा–

राजन् कनकधाराभिस्त्वयि सर्वत्र वर्षति ।
अभाग्यच्छत्रसंछन्ने मयि नायान्ति विंदवः ॥१॥

अर्थात्–हे राजन्! सुवर्ण की धारा के रूप से आप सब स्थानों में वर्षते हैं परन्तु अभाग्यरूप छत्र से ढका हुआ जो मैं हूं मेरे ऊपर एक बूंद भी नहं गिरती।

अन्यच्च–"त्वयि वर्षति पर्जन्ये सर्वे पल्लविता द्रुमाः ।
अस्माकमर्कवृक्षाणां पूर्वपत्रेषु संशयः ॥१॥"

अर्थात्–हे राजन् आपके दानरूप मेघों की वर्षा होने से सम्पूर्ण वृक्षों प नवीन पत्र आ गये, परंतु हमारे आक के तो वृक्षों के पहले के पत्र भी नष्ट हं गये अर्थात् धन मिलने की आशा मे मैंने अपना लकड़ियों का गट्ठा भी फें दिया।

यह सुनकर राजा ने सोचकर कि यह ब्राह्मण अपने मन में अत्यंत दुःखि हुआ है, अपना सेवक ब्राह्मण के साथ कर दिया और उससे कहा कि इसकं कोशाध्यक्ष से तीन लक्ष रुपये, दश हाथी और बीस घोड़े दिलवा देना।

उस सेवक ने कोशाध्यक्ष से जाकर कहा–तब उसने उपरोक्त सम्पत्ति देक उस ब्राह्मण को संतुष्ट किया।

कला २२
(कवियों की कुटिलता)

एक बार कवि कालिदास की अत्यन्त मान्यता देखकर पंडितों ने फैसला किया कि कालिदास को यहां से निकलवाने का यत्न करना चाहिये। उनमें से एक ने कहा कि दासी के द्वारा महाराज भोज को कालिदास के अवगुण कहलवाने चाहिये, तब राजा भोज कालिदास को तत्काल निकाल देंगे। यह निर्णय सबको उत्तम लगा और वे उसी समय दासी के पास गये। उसे धनादि देकर बोले हे सुभगे, कालिदास सबकी कीर्ति को खंडित करता है, इसके समान हमारी मान्यता नहीं हो पाती, इसलिए राजा भोज निकाल दें, ऐसी विधि से इसके दोष राजा से कहना।

दासी ने कहा–ऐसा ही करूंगी। कुछ समय के पीछे एक दिन वह दासी

राजा के पांव दबाकर कपट से वहीं सो रही। जब राजा की किंचित् निद्रा भंग हुई जानकर उसने स्वप्नावस्था की तरह कहने लगी–मदनमालिनी! यह दुरात्मा कालिदास दासी का वेष बनाकर लीलादेवी के पास जाकर रमण करता है।

इतने में ही राजा विस्मित होकर बैठ गया और बोला–हे तरंगवती क्या तू जागती है?

तब जैसे कोई निद्रा में मग्न होता है, इस प्रकार वह श्वास लेने लगी और नहीं बोली। उसको निद्रा में मग्न हुई जानकर राजा ने सोचा कि यह तो निद्रा में है इसके मुख से जो कुछ निकल रहा है, वह ठीक ही है, क्योंकि जो कुछ मदनमालिनी से कहा होगा, वही अब नींद में कह रही होगी। कालिदास रानी के साथ अवश्य व्यभिचार करता होगा? दूसरे दिन राजा परीक्षा के लिये ज्वर का बहाना बनाकर निवास में सो रहे। कालिदास को उसी के द्वारा बुलवाया, पश्चात् लीलादेवी से कहा–हे प्रिये! मुझे किंचित् भूख की इच्छा है, आज तुम स्वयं भोजन बनाकर लाओगी, तभी भोजन करूंगा

राजा के कथन को स्वीकार करके रानी ने मूंग की खिचड़ी बना तत्काल सुवर्ण के पात्र में राजा के समीप लायी।

राजा ने उस खिचड़ी को देखकर बोला–

मुद्गदाली गदव्याली कवीन्द्र वितुषा कथम्?

अर्थात्–हे कवींद्र! रोग के नष्ट करने में सर्पिणी रूप यह मूंग की दाल छिलकों रहित कैसे हो गयी?

रानी पास ही बैठी थी, कालिदास ने उत्तर दिया–

श्लोकउत्तरार्ध–"अन्धोबल्लभसंयोगे जाता विगतकञ्चुकी ।।१।।"

अर्थात्–भात के साथ में दाल ने अपनी कंचुकी खोल दी अर्थात् भात पति है और दाल स्त्री, इसलिए पति का संयोग होने से पत्नी ने अपनी कंचुकी खोल दी। रानी उस श्लोक को सुनकर किंचित् मुस्कराने लगी। राजा ने ऐसा देखकर सोचा कि रानी अवश्य कालिदास से प्रेम करती है इसी कारण कालिदास ने न कहने योग्य श्लोक कह दिया और उसे सुनकर वह मुस्कराने लगी। स्त्री के चरित्र को कौन जनाता है?

"राष्ट्रस्य चित्तं कृपणस्य वित्तं मनोरथं दुष्टहृदन्तराणाम् ।
स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ।।"

अर्थात्–प्रजा का मन कृपण मनुष्यों का धन, दुर्जन मनुष्यों का मनोरथ, स्त्रियों का चरित्र और पुरुषों का भाग्य इनको देवता भी नहीं जानते मनुष्यों की तो बात ही क्या है?

वास्तव में कालिदास अपराधी है परन्तु मारने योग्य नहीं। कालिदास ं राजा ने कहा–हे कालिदास! तुम हमारे राज्य से इस समय चले जाओ औ इस समय तुम्हारे उत्तर की भी आवश्यकता नहीं है।

कालिदास वहां से तत्काल उठकर अपनी वेश्या के यहां गया और वेश्या व कहा–हे प्रिये! मुझे अब जाने की आज्ञा दो; क्योंकि राजा भोज ने अपने नग से निकलने की आज्ञा दी है। मुझे विश्वास है कि इन दुष्ट पंडितों ने ही राजा वे कान भरे हैं।

विलासवती (वेश्या) बोली कि जो अपने सुखदुःख का साथी हो, वह परम मित्र है। ऐसी अवस्था में ही मित्रता की परीक्षा होती है। हे प्रिय! जब तक मैं विद्यमान हूं, राजा से क्या परवाह करना है, आप सुखपूर्वक मेरे घर मे रहिये, किसी प्रकार की चिंता न करें। यह सुनकर कालिदास ने उसके यहां रहने का विचार किया।

राजभवन से जब कालिदास निकल आया, तब लीलादेवी ने राजा भोज से पूछा–हे देव! कालिदास से तो आपकी परम मित्रता थी, सो अब क्या कारण हुआ जो उन्हें अपने देश से भी निकाल दिया?

"शोकारातिभयत्राणं प्रीतिविश्रम्भभाजनम् ।
केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ।।१।।"

शोकरूपी शत्रु से रक्षा करने वाला, प्रीति और विश्वास का पात्र जो 'मित्र है यह दो अक्षर का रत्न किसने रचा है।

रानी के कथन को सुनकर राजा बोले कि–हे प्रिये! मुझसे एक मनुष्य ने कहा था कि कालिदास दासीका वेष धारण करके रानी के पास जाता है और रमण करता है, सो मैंने परीक्षा के लिये ज्वर का बहाना बनाया था। मैंने कालिदास को अब भली प्रकार जान लिया; क्योंकि उसने इस समय यह अनुचित श्लोक पढ़ा और उसको सुनकर तुम्हारा मुखकमल भी प्रफुल्लित हो उठा, उसका बड़ा भारी अपराध होने पर भी मैंने उसको केवल देश से निकाल जाने का ही दंड दिया है और तुम्हें चतुर जानकर तुम्हारे अपराध को क्षमा कर दिया है।

हंसती हुई रानी बोली कि हे देव! मैं धन्य हूं; क्योंकि मैं आप सरीखे बुद्धिमान् की स्त्री हूं। मुझे आश्चर्य होता है कि मेरा स्वभाव आप अच्छी तरह जानते हैं, तो मेरा मन किसी अन्य पर कैसे जा सकता है? मुझे बड़ा खेद है कि जो आप मुझे बिना शीलवती बनाये अथवा बिना दुराचारिणी बनाये ही यहां से जा रहे हो।

राजा ने रानी की बात स्वीकार करके एक सर्प मंगवाया तथा अग्नि

प्रज्वलित करायी और रानी से कहा कि अब तुम अपने शील का प्रभाव दिखलाओ। रानी उसी समय स्नान तथा अपने इष्ट देवता का ध्यान करके आयी और झट सर्प को उठा लिया सर्प को हाथ में लेते ही उसका विष गल गया और वह मृतकवत् हो गया। उसका स्वभाव और तेज सब जाता रहा। जब सर्प ने रानी को नहीं काटा, तब रानी ने उसको छोड़कर झट अग्नि में प्रवेश किया। अग्नि में घुसते ही वह प्रज्वलित अग्नि तत्काल शीतल जल के सदृश हो गयी और उसकी उष्णता बिलकुल नष्ट हो गयी, तब राजा को पूर्ण विश्वास हो गया कि वास्तव में मुझे भ्रम था और मैंने अपनी मूर्खता से इसे अपवित्र समझा और कालिदास को निकाल दिया! मेरी चतुराई, गंभीरता, लज्जा क्या कुंठित हो गयी है? मैंने कुछ भी न समझकर जल के समान निर्मल स्वरूप चंद्र समान शांत और सूर्य के समान प्रकाशित अमूल्य रत्न को अपने देश से निकाल दिया। जिस प्रकार चंद्रमा की चन्द्रिका रहित रात्रि शोभित नहीं होती, उसी प्रकार बिना कालिदास के सभा शोभित नहीं होती। कवि कालिदास की कुशलता ने राजा के चित्त को विकल कर रखा था। राजा हर समय इसी विचार में पड़े रहते थे कि किस प्रकार कालिदास वापस आ जाये। एक समय भोज चन्द्रमा की निर्मल चांदनी रात्रि में रानी–सहित क्रीडा कर रहे थे, तब रानी के मुखस्वरूप चंद्रबिंव के समान पूर्ण चंद्र को देखकर बोले–

"तुलणा अणु अणुसरइ, ग्लौ सो मुहचंदस्य खु एदाये ।।"

अर्थात्–यह चंद्रमा इस रानी के मुखरूपी चंद्रमा की कुछ समता करता है?

प्रातःकाल राजा सभा में आये और सब पंडितों के सम्मुख इस श्लोक का आधा चरण पढ़कर कहा–हे पंडितो! इस श्लोक को पूर्ण करके लाओ, यदि तुमसे यह श्लोक पूर्ण न हो तो यहां से निकल जाओ, यह सुनकर कवि लोग विस्मित हो गये और सब अपने–अपने घर गये। वहां बहुत समय तक विचार किया, परंतु किसी की समझ में इसका अर्थ न आया, तब सब पंडित भयभीत हो गये। सब बाणकवि से बोले–हे पंडितराज! तुम राजा से आठ दिन की अवधि ले आओ। बाणकवि राजा के पास गया और आठ दिन की अवधि मांगी।

राजा ने कहा–यदि आठ दिन में यह श्लोक पूर्ण न हुआ, तो नवें दिन सब पंडित यहां से निकल जायें।

राजा की बात पंडितों से कहकर बाणकवि अपने घर गया।

जब आठ दिन बीत गये, तब रात्रि में सब पंडित एकत्रित हुए और उनसे

बाणकवि बोला—अहो कवियो! विद्या और प्रतिष्ठा के मद से तुम सबने कालिदास को निकालवा दिया, ऐसे संकट के समय कालिदास ही तुम सबकी प्रतिष्ठा को कायम रखने वाला था, कालिदास को निकालवाकर अब क्या तुम्हारी महत्ता होगी? यदि कालिदास होता तो हम सबकी ऐसी गति क्यों होती? जिस बुद्धि से तुमने उसको निकालवा दिया है, उसका मजा तुम्हें अब पूरी तरह से चखना पड़ रहा है। फिर मयूर कवि बोला कि अब अवधि पूर्ण हो चुकी है, कालिदास के बिना इसे कौन पूर्ण कर सकेगा?

संग्रामेषु भटेन्द्राणां कवीनां कविमंडले ।
दीप्तिर्वा दीप्तिहानिर्वा मुहूर्तेनैव जायते ।।१।।"

अर्थात्—संग्राम में योद्धाओं की और कवि मंडल में कवियों की जीत तथा हार एक ही मूहूर्त में जानी जाती है।

अब मेरी तुच्छ बुद्धि में आता है कि आज ही रात्रि को सम्पूर्ण सामान लेकर सब चुपके से यहां से चल दें यदि नहीं चलोगे तो कल राजा जबरदस्ती सपरिवार सबको निकालवा देंगे और सबका धन—धान्यादि लुटवा देंगे।

इस बात को सभी ने स्वीकार किया अपने—अपने घर जाकर नगर छोड़ देने की व्यवस्था में लग गये। तैयार होकर अपनी—अपनी सामग्री लेकर सब चल दिये।

कालिदास वहीं ही विलासवती के बाग में छिपा हुआ था। जब बहुत—सी सामग्री के साथ तमाम परिवारों को जाते हुए देखा, तो दासी को सब हाल जानने के लिए भेजा।

वह जाकर देख आयी और बोली आज सब कवि अपने परिवारों सहित कहीं को जा रहे हैं। ऐसा ज्ञात है कि राजा ने जो श्लोक पूर्ण करने की सबको आज्ञा दी थी, वह पूर्ण नहीं हुआ है। यह सुनकर कालिदास ने कहा—हे प्रिये! मेरे वस्त्र अत्यन्त शीघ्र लाओ, ताकि इन जाते हुए कवियों की रक्षा करके मैं इन्हें रोकूँ।

दासी ने वस्त्र ला दिये। कालिदास वस्त्र धारण कर हाथ में खड्ग लेकर सबसे पहले बहुत दूर पर जाकर बैठ गया। जब वे लोग मार्ग में जाते हुए दीखे, तब उसने पूछा—हे विद्यासागरो! बृहस्पति के समान तुम सब ने कहां पधारने की इच्छा की है? कुशल तो है? मैं भी काशी से कुछ धन की इच्छा करके आ रहा हूँ!

यह सुनकर सब कवि मजाक में बात को अनसुनी कर चले गये। परन्तु एक कवि ने उसे विद्वान् समझकर उसे बताया कि हे द्विजराज! राजा ने हमें एक श्लोक पूर्ण करने के लिये दिया था, परन्तु वह हमसे आठ दिन में भी पूर्ण न हो

सका। इसलिए राजाज्ञा से अब हमको देश छोड़ता पड़ा।

यह सुनकर कालिदास ने पूछा—राजा ने आपको कौन सा श्लोक दिया था? उस पंडित से वह श्लोक सुनकर कालिदास बोला—ठीक है, चंद्रमा का पूर्णमंडल देखकर राजा ने यह श्लोक रचा है, सो इसका उत्तरार्द्ध यह होना चाहिये।

श्लोकउत्तरार्ध—"अणु इदि वणयदि कहं
अणुकिदि तस्य पडिपदि चंदस्य ।।"

अर्थात्—इसे सुनकर सब कवि विस्मित हो गये। यह कहकर कालिदास तो वहां से चला गया और सब कवि आपस में कहने लगे कि—अहो! यह पुरुष है या सरस्वती ही पुरुष का रूप धारण करके आ गयी थी।

फिर सब कवि लौटकर अपने-अपने घर आ गये और सब सामग्री रखकर बोले, प्रातःकाल ही सबको सभा में चलना चाहिये, नहीं तो वह पंडित अर्द्ध श्लोक कहकर महत्व प्राप्त कर लेगा।

सबने इस बात को स्वीकार किया। प्रातःकाल सबके सब एकत्र होकर सभा में गये और राजा को आशीर्वाद देकर बैठ गये। फिर बाणकवि बोला—हे देव! आपने जो कहा था उसको आप ही जान सकते हैं, हम उदर-पोषण करने वाले क्या जानेंगे, फिर भी कुछ कहना चाहिए।

"तुलना अणु अणु सरइ, ग्लौ सो मुहचन्दस्य खु एदाये ।
अणु इति वणयदिकहं अ-, णुकिदि तस्य पडिपदि चन्द्रस्य ।।१।।"

छायाश्लोक—तुलनामन्वनुसरिति ग्लौः स मुखचन्द्रस्य खल्वेतस्याः ।
अन्विति वर्ण्यते कथम् नुक्तिः तस्य प्रतिपदि चन्द्रस्य ।।१।।

अर्थात्—इस रानी के मुखचंद्र की यह चंद्रमा निश्चय समानता करने योग्य है, परंतु प्रतिपदा का चंद्रमा उस मुख की समानता कैसे कर सकता है? अर्थात् मुख तो सदा पूर्ण मण्डल के सदृश है और प्रतिपदाके दिन चंद्रमा की एक कला होती है, फिर वह किस प्रकार समानता कर सकता है?

इस प्रकार राजा को विश्वास हो गया कि यह पद अवश्य ही कालिदास का बनाया हुआ है। राजा ने बाणकवि को पन्द्रह लक्ष रुपये देकर सबको विदा किया। सब धन लेकर बाणकवि अपने घर चला गया।

तब सब पंडितों ने मिलकर कहा—कि बाण कवि ने यह बहुत अनुचित कार्य किया है; क्योंकि सब साथ ही साथ थे, सबको इस धन में हिस्सा मिलना चाहियें। राजा के सम्मुख इस बात को कहना चाहिये।

फिर सब राजा के पास गये और सारा हाल कह सुनाया!

यह सुनकर राजा ने विचार किया कि निश्चय ही कालिदास यहीं है। मेरे भय से छिपा हुआ है। राजा ने सेनापति को आज्ञा दी कि, सब योद्धाओं को

तुरन्त तैयार कराओ और कालिदास को ढूंढ़ने चलो। आज्ञा पाते ही सब योद्धा तैयार हो गये और सेनापतियों ने राजा से कहा–महाराज! सेना तैयार हो गयी है। फिर सब पंडितों सहित राजा घोड़े पर सवार होकर चल पड़ा और थोड़ी सी सेना साथ ले ली। फिर वहां ही (जहां उन कवियों को वह पंडित मिला था) पहुंचे, किंतु वहां पता न लगा। तब खोजियों (जो पांव पहंचानते हैं) को आज्ञा दी कि पहंचानो कोई चोर रात को किधर गया है। यह कहकर राजा अपने मंदिर की ओर चला गया। उन खोजियों ने ढूंढ़ते--ढूंढ़ते संध्या को पता लगाया कि ऐसे पांव वाला इस वेश्या के घर को ही गया है। उन्होंने आकर राजा से कहा–महाराज! उस चिह्नवाले पांव का मनुष्य विलासवती वेश्या के यहां गया है।

राजा ने तुरंत विलासवती के घर चारों ओर घेरा डलवा दिया और मंत्रियों सहित उसके घर की ओर चला।

कालिदास ने यह कोलाहल सुनते ही विलासवती से कहा–हे प्रिये! मेरे कारण ही तुम पर यह संकट आ पड़ा है।

यह सुनकर विलासवती बोली–हे सुकवे! यदि राजा वचन से आपका मानभंग करेंगे, तो मुझ सहित यह दासी समूह अग्नि में भस्म हो जायेगा। मित्र की परीक्षा विपत्ति में ही होती है।

यह सुनकर कालिदास बोला–हे प्रिये! राजा मेरा कदापि अनादर न करेगा, वरन् आते ही अत्यन्त हर्षित होकर आलिंगन करेगा। इतने में ही राजा भीतर आ गया और झट कालिदास से चिपट गया। दोनों के नेत्रों से अश्रुपात होने लगा, फिर राजा ने कहा–

गच्छतस्तिष्ठतो वापि जाग्रतः स्वपतोऽपिवा ।
मा भून्मनः कदाचिन्मे त्वया विरहितं कवे ।।१।।

अर्थात्–हे कवे! चलते, बैठते, जागते और सोते मेरा मन कभी तुमसे दूर न हो।

फिर राजा वेश्या से बोला– हे विलासवती! तुझे धन्यवाद है; क्योंकि जिस प्रकार पक्षी को पिंजरे में मनुष्य बांध लेता है, उसी प्रकार इस गुणी कालिदास को तूने अपने पाश में बांध लिया है। राजा ने हर्षित होकर विलासवती को बहुत द्रव्य प्रदान किया और कालिदास को अपने साथ ले आया।

कला २३
(मृत्यु की कविता)

एक दिन वार्तालाप करते-करते राजा भोज ने कालिदास से कहा—हे कविराज! मुझ पर कृपा करके मेरी मृत्यु की कविता बनाओ।

कालिदास ने कहा—महाराज! क्षमा करो, यह कार्य मुझसे न होगा। भोज ने हठ करके फिर कहा—नहीं कालिदास! आज बिना ऐसी कविता सुने, तुम्हें नही छोडूंगा।

राजा का ऐसा हठ देखकर कालिदास क्रोधित हो गया और वहां से उठकर घर की ओर चला गया और फिर नगरी से भी बाहर निकल गया। राजा कालिदास को क्रोधित होकर गया जानकर दुःखित हुआ। कुछ दिन यों ही बीत गया, परन्तु अन्त में राजा को उसका वियोग सहन न हो सका। राजा अपना सब राज्य प्रधानों को सौंपकर योगी का वेष धारणकर कालिदास जिधर गया था। उसी ओर चल दिया।

कुछ दिनों के बाद कालिदास मिल गया। कालिदास ने राजा को नहीं पहचाना। वार्त्तालाप करते समय कालिदास ने पूछा—हे योगिराज! आप किस देश के वासी हैं?

योगी ने उत्तर दिया—हे कविराज! यह पृथ्वी ही मेरा देश है, जहां रह गया वही मेरा वास है। इस समय धारानगरी से आ रहा हूं, हां एक महाउत्पात हुआ है।

कालिदास ने आतुरता से पूछा—क्या हुआ है वहां? योगी ने बताया—पृथ्वी पति महाराज भोज परलोकवासी हो गये। भोज की मृत्यु सुनकर कालिदास मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। कुछ समय में सावधान होकर वार्त्तालाप करने लगा कि हे राजा! अब पंडितों का मान कौन करेगा? मैं आपके बिना जीवित रहकर अब क्या करूंगा? हाय! हाय! धारानगरी पतिहीन हो गयी। कुछ देर चुप रह कर फिर बोला—

"अद्य धारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती ।
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवगते ।।१।।"

अर्थात् राजा भोज के परलोकवासी होने पर धारानगरी निराधार हो गयी, सरस्वती का कोई आश्रय नहीं रहा और सब पंडित खंडित (निराश्रित) हो गये।

कालिदास ने जब यह श्लोक पढ़ा, तब अपने ऊपर कालिदास की इतनी

प्रीति देखकर योगीरूप भोज भी मूर्च्छित हो गया।

उसको इस प्रकार पड़ा देखकर कालिदास को संशय हुआ और धीरे-धीरे देखा तो पहचान गया कि यह तो स्वयं भोज ही है। फिर राजा को सावधान करके कालिदास ने कहा—महाराज! आपने मुझे पहचाना, परन्तु यह श्लोक रचने में कुछ अशुद्ध हो गया है, सो अब शुद्ध करके कहता हूं, सुनो—

"अद्य धारा सदाधारा सदालम्बा सरस्वती ।
पण्डिता मण्डिताः सर्वे भोजराजे भुवं गते ।।१।।"

अर्थात् राजा भोज के इस पृथ्वी में होने से धारानगरी उत्तम आधारवाली हुई है, सरस्वती आश्रयवाली हुई है और सब पंडित उनसे शोभा पा रहे हैं।

अपने ऊपर कालिदास की इतनी प्रीति जानकर भोज अत्यन्त प्रसन्न हुआ और कालिदास को साथ लेकर धारानगरी आ पहुंचा।

कला २४
(कड़ कड़ धप्प)

एक दिन भोजराज अपनी पटरानी लीलावती के साथ रत्नजटित झूले में झूल रहे थे, उस समय सोने की सांकल के झूले की कड़ी घिस गयी थी, उसका किसी को ध्यान न था, झूलते-झूलते कड़ी एक साथ टूट पड़ी और टूटते समय "कड़कड़ धप्प" ऐसा शब्द हुआ इस शब्द का राजा ने एक चरण बनाया—

"कड़ी कड़क गइ कड़कड़ धप्प"

कुछ समय बाद राजा सभा में आया। जब सब पंडित एकत्र हुए तब राजा ने पूछा—मुझे किसी एक कविता का एक चरण याद आया है, उसके तीन चरण कोई कहो? यह कहकर राजा ने चौथा चरण सुनाया—

"कड़ी कड़क गइ कड़कड़ धप्प"

सब पंडित इस चरण पर विचारने लगे, कुछ समय तक उत्तर न मिलने पर कालिदास ने खड़े होकर कहा—महाराज! सुनो—

भाषा छंद—"भोज प्रेमभर भयो भुजंग,
लिपटो लीलावति के अंग ।। जब आनन्दभयो
गड़गप्प, कड़ी कड़क गइ कड़कड़ धप्प ।।"

उस समय कालिदास उपस्थित न था, फिर भी उसने वही सब बात कही, यह देखकर राजा और सभा के पंडित आश्चर्यचकित हो उठे और राजा ने उसकी चतुरता देखकर उसे अतुल द्रव्य दिया।

कला २५
(कुलटा रानी)

राजा भोज की एक रानी दुराचारिणी थी। वह स्त्रीचरित्र में अत्यन्त निपुण थी, राजा भोज के सम्मुख अपनी इतनी पतिव्रता दिखाती कि राजा उस पर सदा मोहित रहता और उसे सबसे कोमल हृदया मानता था।

एक दिन राजा उस रानी के साथ विनोद कर रहा था। इतने में छत पर बैठा एक कौआ बोला। उस कौए के वचन सुनकर रानी जैसे अधिक घबरायी हो, इतनी कोमलता दिखाकर बोली—हे नाथ! यह कौआ कैसे कठोर शब्द बोलता है? मुझसे यह शूल के समान अत्यन्त दुःखदायक कौवे के वचन नहीं सहे जाते, राजा उसे इतनी कुम्हलाई हुई देखकर अधिक मोहित हुआ। उसने कौवे को चुप किया। कुछ समय के बाद राजा वहां से उठकर अपने विचारभवनमें आ गया, वहां कालिदासके आने पर राजा ने उससे कहा—

श्लोक १ चरण—दिवा काकरुताद्भीता'

अर्थात् दिन में कौवे के स्वर के भयभीत होनेवाली, श्लोक का यह एक चरण राजा ने कालिदास को सुनाया।

यह सुनकर कालिदास ने उत्तर दिया—

श्लोक २ चरण—रात्रौ तरति नर्मदाम्"

अर्थात्—यह स्त्री रात्रि के समय नर्मदा को भी तैर जाती है।

यह सुनकर राज भोज ने इस विषय में अधिक बात नहीं कही, परन्तु कालिदास के शब्दों से उनको संदेह हो गया। कुछ समय तक कालिदास बातें करके चला गया; राजा ने उस रात जागते रहने का निश्चय किया।

उस दुराचारिणी स्त्री के भवन में वह रात को सो रहा था रात्रि अधिक होने पर राजा कुछ समय पहले सो गया। पश्चात् रानी ने राजा के पास आकर झांझन झनझनायी, परन्तु राजा ने करवट भी न ली। यह देखकर रानी अपने आभूषण उतारकर संदूक में रख दिये और वस्त्रादिक बदलकर बाहर जाने को उद्यत हुई। राजा तो जाग ही रहा था। वह राजा के देखते-देखते चली गयी। राजा ने भी बाबाजी के कपड़े तैयार कर रखे थे, रानी ने बाहर जाते ही राजा उठा और वे वस्त्र पहनकर पीछे-पीछे गया।

रानी के पीछे-पीछे राजा चला जा रहा था। रानी नदी की ओर चली। राजा बाबाजी के वेश में था, इससे रानी ने उसे नहीं पहचाना। वह रानी के सम्मुख आया, उसी समय रानी वस्त्र कसकर नदी में उतरने को उद्यत हुई।

राजा उसके आगे आकर बोला–हे रानी![१] मेरे लड़के नदी के पार हैं, मैं यह भीख मांगने आया था, परंतु रात्रि हो जाने से मार्ग नहीं दीखता। रानी उसकी ओर देखकर बोली–'तू नदी के पार कैसे जायेगा ?'

राजा बोला–"यदि तुम किसी प्रकार मुझे पार करा दोगी, तो मैं तुम्हारा उपकार मानूंगा। रानी दयाभाव से बोली–तू कुछ चिंता न कर, मैं तुझे पार करा दूंगी" यह सुनकर वह भिखारी वेशधारी राजा आनन्दित हुआ। फिर दोनों ही नदी में उतर गये। रानी उसे तैराकर पार ले गयी।

राजा वहां से अन्य मार्ग को चला, रानी एक योगी की कुटी की ओर चली, राजा भी धीरे से उसके ही पीछे हो लिया। रानी ने कुटी में जाकर जो अपने साथ भक्ष्य पदार्थ लाये थे, वे उस योगी को खाने को दिये, फिर उसके साथ भोग-विलाल करके वहां से चली।

राजा यह सब देखकर रानी से पहले ही नदी के तट पर आ बैठा और जैसे वह किसी की बाट देखता हो ऐसा भाव दिखाया। रानी के पास आने पर राजा दीन वचन से बोला–'मेरे बालक और कुटुम्बी मेरी राह देखते होंगे, मैं यह भीख मांगने आया था, तुम्हारे साथ नदी पार हो जाऊंगा।

रानी को दया आ गयी और उसने उसे पार कराना स्वीकार कर लिया। मार्ग में राजा का पांव मत्स्य ने पकड़ लिया। भिखारी रूपधारी राजा ने रानी से कहा–मेरा पांव मत्स्य ने पकड़ लिया है।

यह जानकर रानी ने अपने पास से एक पेटी निकाल कर राजा के पांव की ओर फेरी। उस पेटी के प्रभाव से मत्स्य ने पांव छोड़ दिया। यह पेटी उस योगी ने दी थी, उसके प्रभाव से ही रानी नदी पार हो जाती थी।

कुछ समय में दोनों नदी के पार आ गये, राजा शीघ्र चलकर रानी से पहिले राजभवन में आ गया और चुपचाप सो रहा कुछ समय में रानी भी वस्त्र बदलकर अपनी शय्या पर सो रही।

राजा ने अपनी रानी का सम्पूर्ण चरित्र देख लिया था। रानी ने वह पेटी तथा रात्रि के वस्त्र भी जहां रखे थे, उन सबको वह जानता था। प्रभात होने पर राजा नित्य नियमों से निवृत्त होकर अपने विचार भवन में गया; फिर कुछ समय में कालिदास आया। राजा ने उससे पूछा–

तत्र सन्ति जले ग्राहा:

अर्थात्–वहां उस जल में मत्स्य अधिक हैं।

कालिदास ने उत्तर दिया–

---

१ बडाई देकर बोलने में भिक्षुक स्त्री को 'रानी' कहते हैं।

मर्मज्ञा सैव सुन्दरी ।।"

अर्थात्–यह वृत्तान्त जाननेवाली वह स्त्री ही है।

कालिदास की यह अद्‌भुत शक्ति देखकर राजा आश्चर्य में पड़ गया। रात्रि की वह बात उसके अतिरिक्त कोई नहीं जानता था। परन्तु इसने जो वाक्य कहे वह कैसे कहे, यह बात जानकर कि कालिदास मेरी रानी की बात जान गया, राजा अति लज्जित हुआ। फिर उस दुराचारिणी स्त्री के भवन में जाकर उसको योग्य दंड दिया।

कला २६

(चन्दनकटोरी का शब्द)

एक दिन महारानी लीलावती राजा भोज के पास से सुवर्णकटोरी में केसर कस्तूरी मिश्रित चन्दन लेकर जा रही थी। पत्थर की पैड़ियों पर चढ़ते समय यकायक सुवर्ण की कटोरी गिर गयी और "टटंटटंटटंटटंटटंटः" का शब्द हुआ। पीछे से दासी झटपट महारानी के पास आयी और कटोरी गिरी हुई देखकर दूसरी ले आयी।

दूसरे दिन राजा भोज सभा में आकर पंडितों के आने पर पूछा–

समस्या–टटंटटंटटंटटंटटंटः ।।

यह एक श्लोक का चौथा चरण है, इसके प्रथम तीन चरण क्या हैं, उन्हें बताओ।

यह सुनकर सब विचार में पड़ गये। कुछ समय तक कोई न बोला, तब कालिदास ने कहा–सुनो महाराज!

भोजप्रियाया मदविह्वलायाः
कराच्च्युतं चन्दनहेमपात्रम् ।
सोपानमार्गेण करोति शब्दं
टटंटटंटटंटटंटटंटः ।।

अर्थात् भोज की भार्या मदनवेदना से व्याकुल हुई हाथ में चंदनपूरित सोने की कटोरी लेकर पत्थर की पैड़ियों पर चढ़ती थी, इतनें में हाथ से थाल गिर गया और उसका 'टटंटटंटटंटटंटटंटः' इस प्रकार शब्द हुआ। कालिदास की यह अद्‌भुत शक्ति देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसको तत्काल रत्नजटित मुद्रिका भेंट की।

कला २७

(दारिद्रय की भस्म)

एक ब्राह्मण अत्यन्त धनहीन था और थोड़ी विद्या पढ़ा हुआ था। वह

बिचारा अपनी आजीविका के लिये घोर परिश्रम करता था, परंतु महाकष्ट से उदरपोषण कर पाता था। उसने धारानगरी में भोज राजा के पास जाने का विचार किया। उसने विचारा कि, राजा के यहां जाऊं तो कुछ ले जाऊं, क्योंकि कहते हैं कि राजमंदिर, देवमंदिर आदि ठिकानों पर भेंट लेकर जाना चाहिए।

"रिक्तपाणि न पश्येच्च राजानं देवतां गुरुम् ।
दैवज्ञं भिषजं मित्रं फलेन फलमादिशेत् ।।१।।"

अर्थात् राजा, देवता, गुरु, ज्योतिषी, वैद्य और मित्र के यहां बिना कुछ भेंट लिये नहीं जाना चाहिए। क्योंकि फल से फल होता है। इसलिए राजा के पास कुछ भेंट लेकर जाने का निश्चय किया, परन्तु भेंट क्या ले जाऊं, इस विचार में पड़ गया वह अत्यन्त धनहीन था, द्रव्य खर्च करने का सामर्थ्य न था। विचार करते करते निश्चय किया कि कोई खाद्य वस्तु ले जाने से राजा प्रसन्न होगा, यह समझ कहीं से ईख (गन्नों) के टुकड़े मांग लाया और इनको जीर्ण वस्त्र में बांधकर धारानगरी में आ पहुंचा।

जहां राजसभा होती थी, वहीं आकर ठहरा। मार्ग में थका हुआ तो था ही इससे उसको निद्रा आने लगी। वहां जो सभा के और मनुष्य बैठे थे, उन मनुष्यों से कहा—"भाई! मैं यहां सो जाऊं जब सभा भर जाए, तब कृपा करके मुझे जगा दीजिये।

उनके स्वीकार करने पर वह वस्त्र मे बंधे ईख के टुकड़े सिर के नीचे रखकर सो गया। जब वह सो गया, तब सभी ने उसकी पोटली खोलकर देखने का विचार किया। सिर के नीचे की पोटली में से धीरे धीरे से गन्ने निकालकर उनके स्थान पर छोटे-छोटे टुकड़े लकड़ी के बांध दिये और उसके सिर के नीचे वैसे ही रख दिये।

कुछ समय बाद जब सभा भर गयी, तब उस ब्राह्मण को जगाया। वह घबड़ा कर उठकर बैठ गया और शीघ्रता से वह पोटली बगल में दबाकर सभा में आया। उसने सबके देखते देखते वह पोटली राजा के आगे खोल दी। उसने तो गन्ने समझकर खोले थे, परन्तु वे लकड़ी के टुकड़े निकले। संपूर्ण सभा लकड़ी के टुकड़े देखकर आश्चर्य में भर उठी। राजा भोज को अपने सम्मुख लकड़ी पड़ी हुई देखकर क्रोध आ गया और वह ब्राह्मण भी गन्नों के स्थान में लकड़ी देखकर भयभीत हो उठा। राजा के मन को विचार में और ब्राह्मण को भयभीत देखकर कालिदास बोला—महाराज! आपके सामने इस ब्राह्मण का लकड़ी के टुकड़े रखने का यह प्रयोजन है—

दग्धं खाण्डवमर्जुनेन बलिना रम्यद्रुमैर्भूषितं
दग्धा वायुसुतेन हेमनगरी लंका पुनस्वर्णभूः ।
दग्धो लोकसुखो हरेण मदनः किं तेन
युक्तं कृतं दारिद्रयं जनतापकारकमिदं केनापि दग्धं नहिं ।।१।।

अर्थात्–सुन्दर वृक्षों से शोभायमान खाण्डववन को अग्नि देकर अर्जुन ने भस्म कर दिया, सुवर्णमयी रावण की लंका को हनुमान् ने भस्म कर दिया, सम्पूर्ण लोकों का सुख देनेवाले मदन को महादेव ने भस्म कर दिया। इससे किसी भी मनुष्यों के सुख की बात बेकार है, क्योंकि सम्पूर्ण मनुष्यों के लिए दुःखदायी दरिद्रता को किसी ने भी भस्म नहीं किया। इसलिए महाराज! इस ब्राह्मण का प्रयोजन यह है कि इन लकड़ी के टुकड़ों से आप मेरी दरिद्रता को भस्म करिये।

राजा यह सुनकर हर्षित हुआ। उसका क्रोध शांत हो गया। फिर उसने उस ब्राह्मण को दस सहस्त्र मोहरें देकर प्रसन्न किया। उन्हें लेकर ब्राह्मण पीछे की ओर देखने लगा। राजा ने आश्चर्य से उसके पीछे देखने का कारण पूछा। ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि महाराज! आपने मुझे द्रव्य दिया है इसमें मैं पीछे फिरकर देखता हूं कि अनेक वर्षों से जो दरिद्रता मेरे पीछे लगी थी, वह अब है कि नहीं। उस ब्राह्मण की यह बात सुनकर सम्पूर्ण सभा हंस पड़ी और ब्राह्मण वहां से चला गया।

कला २८
(रामभट्ट का श्लोक)

नया श्लोक बनाकर लानेवाले को राजा भोज एक सहस्त्र मोहरें देता था। यह बात प्रसिद्ध थी।

गोदावरी के तीर पर रामभट्ट नाम का एक धनहीन ब्राह्मण रहता था, उसने भी नवीन श्लोक बनाकर राजा के पास ले जाने का विचार किया कि जिससे कुछ द्रव्य मिले और उसकी दरिद्रता दूर हो, परन्तु श्लोक किस समय का बनाऊं, इस पर विचार करने लगा। एक दिन वह गोदावरी में स्नान करने जा रहा था, तभी सामने ही एक मनुष्य अपने किसी मृतक की अस्थियां जल में डालने जा रहा था, उसके पीछे एक दही बेचनेवाली जाती हुई सामने मिली। इस पर उसने प्रथम चरण बनाया कि–

श्लोक १ चरण–"अस्थिवद्दधिवच्चैव

अर्थात्–एक चरण बनाकर वह खड़ा रहा। तभी एक स्त्री हाथ में चावलों की पिट्ठी लेकर जाती दिखायी पड़ी और दूसरा कोढ़ से सफेद शरीरवाला एक

पुरुष नजर आया। तभी उसे दूसरा चरण याद आया कि–

श्लोक २ चरण–"पिष्टवत्कुष्ठवत्तथा"

अर्थात्–इस प्रकार आधा श्लोक तो हो गया। अब शेष आधा किस प्रका
चूर्ण करूं, इस विचार में वह था। कुछ समय के पश्चात् उसको याद आया कि
इस श्लोक में राजा को कुछ आशीर्वाद दूं। जिससे वह प्रसन्न होकर द्रव्य दे
फिर उसने तीसरा चरण रचा कि–

श्लोक ३ चरण–"राजंस्तव यशो भाति"

अर्थात्–परन्तु उसे आगे का चौथा चरण याद न आया। थोड़े दिन वह चौ
चरण के विचार में पड़ा रहा, अन्त में एक दिन सोचा कि जिस प्रकार राज
को आशीर्वाद दिया है, वैसे ही मैं अपने को भी कुछ कहूं। वृद्धावस्था थी प
श्लोक पूर्ण करने की शक्ति नहीं थी, वृद्ध का जीवन मृत्तिका के सदृश है–य
सोचते सोचते उसके चौथा चरण बना डाला–

श्लोक ४ च०–"वृद्धब्राह्मणशष्पवत्" ।।१।।

श्लोक पूरा हो गया। तब वह आनन्द में भरकर धारानगरी को चला, व
वह एक धर्मशाला में उतरा। कालिदास आने–जाने वाले की खबर रखता था
इस नवीन ब्राह्मण का आना सुनकर वह मिलने आ गया। वार्तालाप करके व
सब हाल जान गया। फिर उसका श्लोक देखकर बोला–महाराज! तुम्हा
श्लोक के पहले तीन चरण तो उत्तम हैं, परन्तु चौथा चरण नहीं मिलता। इ
चौथे चरण से तो सब अर्थ उलटा हो गया। इसलिए इसके स्थान में इस प्रका
हो तो राजा अत्यन्त प्रसन्न होगा "शरच्चन्द्रमरीचिवत्" इस प्रकार यह चौथ
चरण कहा।

उस ब्राह्मण ने कालिदास की बात मान ली और उसी प्रकार अपने चर
के स्थान पर कालिदास का कहा चौथा चरण जोड़ दिया।

दूसरे दिन वह राजसभा में आया और अपने नवीन श्लोक की बात कही
नवीन श्लोक कहने की आज्ञा मिलने पर वह बोला–

"अस्थिवद्दधिवच्चैव पिष्टवत् कुष्ठवत्तथा ।
राजंस्तव यशो भाति शरच्चन्द्रमरीचिवत् ।।१।।"

यह श्लोक सुनते ही विद्वान् तथा राजा तत्काल ही जान गये कि प्रथम
तीन चरण तो इस ब्राह्मण के रचे हुए हैं, परंतु चौथा चरण किसी दूसरे क
रचा हुआ है। इस बात का किसी प्रकार पता लगाना चाहिये। यह विचार क
पूछा–'हे ब्राह्मण! प्रथम के तीन चरण तो परस्पर मिलते हैं, परंतु चौथ
चरण मिलता नहीं है, क्या कारण है? अपना श्लोक अच्छा न समझ क

रामभट्ट डर गया, परंतु साहस करके कालिदास की ओर अंगुली करके बोला–महाराज! यह चरण तो इनका कहा हुआ है, मेरा चरण तो और ही है। यह कहकर उसने अपना चौथा चरण सुना दिया। वह सुनकर राजा हंसकर बोला–हां, अब श्लोक ठीक बैठ गया। इस कालिदास ने तुम्हें भ्रमित कर दिया था।

मन में तो राजा समझ गया कि यह ब्राह्मण अत्यंत सीधा है। कालिदास ने इसके ऊपर दया करके इसका श्लोक ठीक कर मुझसे कुछ द्रव्य दिलवाने का विचार किया है, इसको जरूर कुछ दूं!

पश्चात् कोशाध्यक्ष को बुलाकर उस ब्राह्मण को कुछ द्रव्य देकर प्रसन्न किया। वह ब्राह्मण राजा भोज को हृदय से आशीर्वाद देकर अपने घर लौट आया और सुखपूर्वक वृद्धावस्था व्यतीत करने लगा।

कला २९
(सोमशर्मा की मूर्खता)

सोमशर्मा नामक दरिद्रता से पीड़ित एक ब्राह्मण था। वह ग्राम ग्राम में घूम–घूमकर विचरकर उदरपोषण करता था। धारानगरी में आया 'राजा भोज विद्वान् ब्राह्मण का सत्कार करता है' यह बात वह जानता था। परंतु वह मूर्ख था, इसलिए जानता था कि राजा मुझे कुछ नहीं देगा। परंतु यदि कालिदास किसी प्रकार कुछ दिलवा दें, तो अच्छा हो। यह विचार कर कालिदास से वह मिला और अपनी दरिद्रता का सब वृत्तांत सुनाया।

उसकी बातें सुनकर कालिदास ने पूछा–'महाराज! तुमने कुछ विद्याभ्यास भी किया है अथवा और किसी काम में कुशल हो, तुम में क्या–क्या गुण हैं।'

सोमशर्मा ने लज्जित होकर उत्तर दिया–'पंडितराज! मैंने विद्या–अभ्यास नहीं किया, इससे राजसभा में दिखाने योग्य मुझमें एक भी गुण नहीं है।'

कालिदास ने कहा–भाई! राजसभा में तो जब कोई गुण हो तभी जा सकते हैं, परंतु तुम तो कुछ भी नहीं जानते, इसलिए एक बार राजा की कृपा होने पर ही संतुष्ट होकर चले जाना। उसने कालिदास का सुझाव स्वीकार कर लिया। कालिदास ने नाम स्थानादिक पूछकर कहा–'तुम्हें जब राजा बुलायें, तब आना और वहां आकर राजा के आगे श्रीफल छोड़कर आशीर्वाद देना कि आशीर्वाद "गाराया" इस प्रकार आशीर्वाद देना, उसके पश्चात् मुझे जो कुछ कहना है, सो कहूंगा।

यह कहकर कालिदास राजसभा में आये। कुछ समय के पीछे राजा को

प्रसन्न देखकर कालिदास ने कहा—महाराजाधिराज! आपके नगर में एक ब्राह्मण आया है, वह विद्वान् तथा शास्त्रज्ञ है।

कालिदास की यह बात सुनकर उसे बुलाने के लिये राजा ने लोगों को भेजा। कुछ समय बाद वे लोग उसे पालकी में बैठाकर लिये आ रहे थे, इतने में उसने वहां खड़े हुए ऊंट देखे। ऊंटों को कभी उसने देखा नहीं था, इससे अपने साथ के पंडितों से पूछा कि 'पंडितजी! यह कौनसा जीव है?'

एक पंडित ने उत्तर दिया 'उष्ट्र'

अभी तक कालिदास का सिखाया हुआ आशीर्वाद वह याद करता हुआ आ रहा था, पर यह नवीन नाम सुनकर वह उसे भूल गया। उसके स्थान में उसे याद करने लगा, पश्चात् सभा में आकर राजा के सम्मुख श्रीफल रख आशीर्वाद देकर बोला—

"उशरटगाराया"

उस विद्वान् ब्राह्मण के मुख से ये शब्द निकलते ही राजा और सब पंडित आश्चर्य में पड़ गये। राजा ने कालिदास की ओर देखा, कालिदास राजा के मन की बात जानकर बोले—राजाधिराज! इन विद्वान् शास्त्रीजी ने आपको आशीर्वाद दिया है, जिसे आप नहीं समझे, इनका कहना है—

श्लोक—"उमयासहितो देवः शंकरः शूलपाणिना
रक्षतु त्वां हि राजेंद्र टकारो घनगर्जनः ॥१॥

अर्थात्—हे राजेन्द्र! शंकर पार्वती सहित शूल है जिनमें, ऐसे हाथ तुम्हारी रक्षा करें और मेघगर्जना करके राज्य में वर्षा करें। प्रत्येक चरण का प्रथम अक्षर लेने से "उशरट" निकला है। यह सुनकर राजा आनंदित हुआ और उस ब्राह्मण को द्रव्य देकर संतुष्ट किया। वह कालिदास को आशीर्वाद देकर बिदा हो गया।

कला ३०
(मूर्ख ब्राह्मण)

चंपक नगर में केशव नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह इतना मूर्ख था कि विद्या किसे कहते हैं, यह भी नहीं जानता था। इतना ही नहीं, उसे शुद्ध बोलना भी नहीं आता था, कहा है कि—

"मांसभक्षाः सुरापाना मूर्खाश्चाक्षरवर्जिताः ।
पशुभिः पुरुषाकारैर्भाराक्रान्ता च मेदिनी ॥१॥"

अर्थात् मांसभक्षी, मद्यपान करने वाले और अक्षरज्ञान रहित मूर्ख मनुष्याकार में पशुतुल्य इस पृथ्वी पर भाररूप हैं।

एक समय वह ब्राह्मण विचरता–विचरता धारानगरी में आ पहुंचा। वहां आकर कालिदास से मिलकर कहा–पंडितजी महाराज! मैं दरिद्रता से पीड़ित हूं, आपके सदृश मेरा दुःख दूर करने वाला कौन है? मेरे ऊपर कृपा करके महाराज से कुछ द्रव्य दिला देंगे तो ईश्वर आपका कल्याण करेगा और मेरी दरिद्रता दूर हो जायेगी।

उसके दीन वचन सुनकर कालिदास को दया आ गयी। कालिदास ने उस ब्राह्मण को अपने यहां रखा। उसे २७ नक्षत्र सिखाने के लिए अपने आदमियों को आदेश दिया।

दो–तीन मास में अत्यंत परिश्रम से सब नक्षत्र सीख जाने पर कालिदास ने विचार किया कि, आज इस ब्राह्मण को महाराज के आगे ले जाकर कुछ द्रव्य की प्राप्ति कराऊं, इससे उस ब्राह्मण को अपने पास बुलाकर कहा–'आज तुमको महाराज की ओर से बुलवाऊंगा। उस समय तुम वहां आना, जिस समय दूसरा कोई न बोलता हो, तब तुम स्मरण किये २७ नक्षत्र के नाम मात्र बोलना और कुछ भी नहीं बोलना।'

उसे ऐसा सिखाकर कालिदास राजसभा में गया। वहां वार्तालाप करते–करते उसने राजा से कहा–'महाराज'! मेरे यहां एक विद्वान् ब्राह्मण आया है।' यह सुनकर महाराज भोज ने कहा–उसको हमारी सभा में बुलाओ।'

यह कहकर सेवक को आज्ञा हुई। आज्ञानुसार सेवक बहुत से आदमी और एक पालकी लेकर महाविद्वान् पंडित को लाने गये। कुछ समय में वह केशव ब्राह्मण कालिदास के कथनानुसार साधारण वस्त्र धारण कर पालकी में बैठकर राजसभा में आया। उसने राजसभा स्वप्न में भी नहीं देखी थी। वह सभा देखकर आश्चर्य में पड़ गया और सीखे हुए को भी भूल गया। २७ नक्षत्रों के नामों में से उसे केवल उस समय चार ही नक्षत्र याद आये और शीघ्रता से वह उन्हें बोल गया।

"अश्विनी, पुनर्वसु, रेवती कृत्तिका"

उन्हें सुनकर राजा आश्चर्य में पड़ गया और कालिदास की ओर देखकर धीरे से बोला–'पंडितराज! तुम तो इस ब्राह्मण की हृदय से प्रशंसा करते थे, परन्तु यह तो महामूर्ख ज्ञात होता है, इसका क्या कारण'।

कालिदास ने उत्तर दिया कि महाराज इस विद्वान् पुरुष ने इन चार नक्षत्रों के नाम कहकर आपको आशीर्वाद दिया है, इसका अर्थ आपके समझ में नहीं आया? सो इस प्रकार है–

"अश्विनी वसतु देवमन्दिरे मन्दिरे वसतु ते पुनर्वसु ।
रेवतीपतिकनिष्ठसेवया कृत्तिकातनयविक्रमो भव ॥१॥"

अर्थात्–अश्विनी (घोड़ी) तुम्हारे घर में निरंतर हो, पुनर्वसु अर्थात् लक्ष्मी भी आपके भवन में निरंतर रहे, रेवतीपति अर्थात् बलदेव का छोटा भाई श्रीकृष्ण की सेवा से कृत्तिका का पुत्र कार्तिक स्वामी के सदृश आपका पराक्रम हो।

इस प्रकार कालिदास का वचन सुनकर राजा आनंदित हुआ और केशव के पांव पकड़कर उसे पांच सहस्र मोहरें देकर प्रसन्न किया! इसके बाद वह दरिद्री ब्राह्मण कालिदास का उपकार मानकर अपने नगर को चला गया और वहां शेष आयु सुखपूर्वक व्यतीत की।

कला ३१
(प्रश्नोत्तर)

एक दिन राजा ने सभा में आते ही प्रश्न किया:–

श्लोक च० ४–"गौरीमुखं चुम्बति वासुदेवः ।"

यह चौथा चरण है, प्रथम के तीन चरण कहो, कुछ समय विचार करने पर कालिदास ने कहा–महाराज! सुनो–

"का शम्भुकान्ता किमु नेत्ररम्य
शुकार्भकः किं कुरुते फलानि ।
मोक्षस्य दाता स्मरणेन को वा
गौरीमुखं चुम्बति वासुदेवः ॥१॥

अर्थात्–शिव की स्त्री कौन? "गौरी" नेत्रों को रमणीय क्या? "मुख" तोते के बच्चे फल को क्या करते हैं? "चुंबन" जिसका स्मरण करने से मोक्ष की प्राप्ति हो ऐसा कौन? "वासुदेव"

इस श्लोक के प्रथम के तीन चरणों में प्रश्न है और–चौथे चरण में उनके उत्तर हैं यह सुनकर राजा अत्यंत प्रसन्न हुआ और दूसरा प्रश्न किया–" कुन्तीसुतो रावणकुम्भकर्णाः" इसके तीन चरण कहो।

कालिदास ने उत्तर दिया'महाराज! आपके कहे हुए चरण से लोग आश्चर्य में पड़ जायेंगे। इसका अर्थ होगा कि "रावण और कुंभकर्ण कुंती के पुत्र हैं" परन्तु प्रथम के तीन चरण सुनकर सब समझ जायेंगे। यह श्लोक इस प्रकार है–

"का पाण्डुकान्ता गृहभूषणं किं को रामशत्रुः किमगस्त्यजन्म ।
कः सूर्यपुत्रो विपरीत पृच्छा कुन्ती सुतो रावणकुम्भकर्णाः ॥१॥"

अर्थात्–पांडुराजा की स्त्री कौन? "कुन्ती" घर का भूषण क्या? "सुत" (पुत्र) राम का शत्रु कौन? "रावण" अगस्त्यऋषि का जन्म कहां से? "कुम्भ" (घड़े से) सूर्य का पुत्र कौन? "कर्ण"

यह सुनकर राजा भोज और सब पंडित आनन्द से भर उठे।

कला ३२
(विद्यावादभयम्)

महाराज भोज की सभा में चौदह सौ प्रसिद्ध पंडित थे। उनमें कालिदास मुख्य थे। कालिदास की कीर्ति चारों ओर फैली थी और उसके साथ वादविवाद करने के लिये अथवा मिलने के लिये तमाम देशों से महान् पंडित और कवीश्वर आते थे। माधव नामक एक बड़ा पंडित था वह बड़े–बड़े देशों में विचरता हुआ और राजसभाओं को पराजित करता हुआ धारानगरी में आया और अपनी विद्वत्ता बताकर तथा कालिदास को पराजित करके अपना नाम प्रसिद्ध करने का उसने विचार किया। उसके साथ २५–३० शिष्य और बहुत से सेवक थे। पंडित की कीर्ति चारों ओर फैल रही थी और अनेक बातें कालिदास ने भी सुनी थीं। इससे पहले तो कालिदास के मन में भय पैदा हुआ कि कहीं भोज की सभा के चौदह सौ पंडितों के आगे संसार में विस्तृत मेरी कीर्ति नष्ट हो जाये, परन्तु कालिदास युक्ति वाला था। माधव के आने के दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर कालिदास ने लकड़ी बेचने वाले का वेष बनाया और जहां माधव ठहरा था, वहां शिरपर लकड़ी रखकर गया और "लकड़ी लो लकड़ी" की आवाज लगायी। उस पंडित को तो लकड़ियों की आवश्यकता थी ही, इससे वेषधारी लकड़हारे को बुलाकर लकड़ियों का मूल्य पूछा। कालिदास ने कहा–महाराज! तुम ब्राह्मण हो, इसलिए तुमसे कुछ नहीं लूँगा। परन्तु तुम्हारे भोजन करने पर जो भोजन बचे उसे दे देना, मेरे बच्चे खा लेंगे।

उसका यह कथन सुनकर माधवशर्मा ने कहा–'यदि हमारे भोजन करने के पश्चात् कुछ नहीं बचे तो क्या करेगा?'

लकड़हारे ने उत्तर दिया–मेरा प्रारब्ध! मेरे घर की सूखी रोटी तो कहीं नहीं जायेगी।' उसका यह संतोषजनक उत्तर सुनकर माधव आनंदित हुआ; फिर उसकी लकड़ी लेकर उसे एक ओर बैठने को कहा और अपने आदमियों को भोजन बनाने की आज्ञा दी। कालिदास एक ओर बैठकर सब कुछ देखता रहा।

माधवशर्मा तथा उसके शिष्य आदि का वार्तालाप सुनकर कालिदास को विश्वास हो गया कि पंडित समर्थ है। पर जो भी है सो ठीक है।

भोजन करके वे बाहर आकर बैठे। कुछ देर बाद पंडित ने श्लोक का एक चरण रचकर कहा–

श्लोक च०–१–''परिपतति पयोनिधौ पतङ्गः''

अर्थात्–सूर्य समुद्र में गिरता है।

मेरे इस चरण का मिलता हुआ और अंत्य में 'गः' आवे ऐसा दूसरा चरण कोई कहो?

यह वचन सुनकर केशव नामक विद्यार्थी बोला–

श्लोक च०–२–''सरसिरुहामुदरेषु मत्तभृङ्गः''

अर्थात्–मद करके उन्मत्त हुए भ्रमर कमल में बैठते है। केशव का दूसरा चरण सुनकर माधव अत्यन्त हर्षित हुआ। उसने दूसरे से तीसरा चरण कहने को कहा। इस पर वल्लभ नामक शिष्य बोला–

श्लोक च० ३–''उपवनतरुकोटरे विहङ्गः''

अर्थात्–पक्षी उपवन के वृक्षों की कोटर में निवास करते हैं।

यह सुनकर वह और भी आनंदित हुआ और तीसरे को चौथा चरण रचने की आज्ञा दी जिससे श्लोक पूर्ण हो जाये। परन्तु किसी शिष्य से भी चौथा चरण न हो सका। अन्त में माधवशर्मा ने स्वयं ही प्रयन्त किया, परन्तु उससे मिलता हुआ चौथा चरण न बन सका। कालिदास चुपचाप यह दृश्य देख रहा था। देखते देखते वह उनके समीप आया। उसने देखा कि ये सब चुप हैं, तब वह हाथ जोड़कर बोला–''पंडितजी! क्या विचार में पड़े हो? मुझे आज्ञा दो तो मैं कुछ कहूँ!'

यह सुनकर माधवपंडित व्यंग्य में भरकर बोला–'अरे? तू क्या कहेगा? यह तेरे बस की बात नहीं है, देखता नहीं इसमें बड़े–बड़े विद्वान् चुप होकर बैठ गये हैं।'

कालिदास ने फिर नम्रतापूर्वक कहा–''यह तो ठीक है कि, यह विद्वानों की बात है, किन्तु मुझे आज्ञा दो तो जो मेरे मन में है, कहूँ।

माधवशर्मा ने सोचा कि यह यदि जोर दे रहा है तो इसका मानभंग नहीं करना चाहिये, जो कहता है उसे सुन तो लूं। यह विचार कर पंडितजी ने कहा–''बोल तू क्या कहता है?' लकड़हारे ने कहा–

श्लोक च० ४–''युवतिजेनेषु शनैः शनैरनङ्गः ।।''

अर्थात्–युवा स्त्रियों में धीरे धीरे काम उत्पन्न होता है।

श्लोक ठीक पूर्ण हो गया, परन्तु सुनकर माधवशर्मा आश्चर्य में पड़ गया और पूछा–तू कौन है?

लकड़हारे ने कहा–'महाराज! इतने में भूल गये मैं तो लकड़ियां बेचने

वाला हूं, आपको प्रातःकाल लकड़ी लाकर दी थी, यहां अन्न की आशा से बैठा हूं।'

माधवशर्मा ने फिर पूछा–'यह श्लोक तुझे कैसे आ गया'।

कालिदास ने कहा–'महाराज! मैं इस श्लोक–पिसलोक कुछ नहीं जनाता। बचा हो तो आप मुझे भोजन दो नहीं तो मैं अपने घर जाऊँ, घर पर बच्चे मेरी बाट देखते होंगे।'

माधव पंडित ने कहा–'नहीं! नहीं! मैंने तुझे वचन दिया है, भोजन देता हूं, परन्तु कुछ देर बैठ, तुझे यह कैसे आया यह तो बता?'

उसने उत्तर दिया–पंडितजी! मैं पहले ही जानता था कि मुझ द्ररिद्री का कहना आप सरीखे बड़े–बड़े मनुष्यों को ठीक नहीं लगेगा, परन्तु कौन जानता है कि मेरे मन में क्या है?

माधव ने कहा–नहीं! तेरा कहना बुरा नहीं है। तेरे इस चरण से तो मेरा श्लोक पूर्ण हो गया।

कालिदास ने प्रार्थना की कि महाराज! यदि मेरे कहने से तुम्हें दुःख हुआ हो, तो समझ लो कि मैं कुछ बोला ही नहीं और मेरा वचन मुझे लौटा दो।

माधव ने फिर समझाया–"ना! यह नहीं होगा, पर यह श्लोक तू किस प्रकार बना पाया, वह मुझे बता।'

कालिदास ने बतलाया–महाराज! हमारे ग्राम में एक ब्राह्मण है, वह पढ़ा–लिखा बहुत चतुर और हमारे राजा का मान्य है, उसको सब लोग पंडित कहते हैं, उसके घर किसी–किसी दिन मैं लकड़ी देने जाता हूं और वहां भोजन की आशा से बैठा रहता हूं। उस समय वह और उसके शिष्य परस्पर वार्तालाप करते हैं, उसे मैं भी सुनता हूं और कुछेक याद भी रह जाता है। उसी तरह यह भी मेरी स्मृति में रह गया और मैं बोल गया। मैंने कुछ अशुभ कहा हो तो क्षमा कीजिये; आप बड़े हैं।

यह सुनकर माधव पंडित ने पूछा–कालिदास पंडित बड़ा विद्वान् है?

उसने उत्तर दिया–कालिदास के दास–दासी भी विद्वान् हैं। यही नहीं, उसके पशु–पक्षी तक भी विद्वान् हैं, उन्हें पंडित ने ही पढ़ाया है।

माधव ने पूछा–तूने कभी उस पंड़ित को अच्छी तरह से भी देखा है? उसने उत्तर दिया–पंडितजी! बड़े–बड़े लोगों को उनके दर्शन नहीं होते, तो मेरी क्या गिनती? सभा में वे पालकी में बैठकर जाते हैं और उनके साथ में इतनी सवारियां होती हैं कि लोगों के चलने का मार्ग नहीं मिलता, तो मेरी दृष्टि में वे कैसे आयेंगे।

लकड़हारे की यह बात सुनकर माधवशर्मा आश्चर्य में पड़ गया और अपने मन की बात गुप्त रखी। परन्तु चतुर कालिदास उसके मन की बात जान गया। फिर माधव ने अपने सेवक को बुलाकर उसको भोजन देने की आज्ञा दी। वह भोजन लेकर जैसे कोई अत्यन्त संतोषित होता है, ऐसा भाव दिखाकर और नमस्कार करके वहां से चल दिया।

लकड़हारे के चले जाने के बाद माधव शर्मा ने सोचा कि जो सोचकर मैं यहां आया हूं वह सफल नहीं हुआ, परन्तु आज मुझे अपना सौभाग्य ही समझना चाहिये, कि मेरे मान का रक्षक यह लकड़हारा मिल गया। जिस कालिदास के शिष्य इतने विद्वान् हैं कि उनके मुख से सुनकर इस लकड़हारे ने भी याद कर लिया, तो कालिदास कितना विद्वान् होगा? ऐसे महान् विद्वान् के साथ वाद–विवाद करके जय मिलने के बजाय मेरी कीर्ति भी नष्ट हो जायेगी। अतः इसके साथ मित्रता करनी चाहिये, मित्रता करने से लाभ ही होगा।

यह विचार कर वह अपने मन का अभिमान त्यागकर राजा भोज से मिलने गया। महाराज ने उसकी कीर्ति पहले से ही सुन रखी थी, उन्होंने उसका अधिक सत्कार किया। पूर्ण सत्कार करने के बाद राजा ने अनुरोध किया पंडितराज! कोई विषय निकालकर मेरा और इस सभा का मन हर्षित करने की कृपा करिये।

माधव पंडित ने उत्तर दिया–राजाधिराज! आपके पास कालिदास रूपी अमूल्य रत्न है। इस महान् विद्वान् से कोई भी पंडित वाद विवाद करने में समर्थ नहीं है, फिर मैं तुच्छ किस गिनती में हूं। इससे ही नहीं, इसके शिष्यों के साथ भी वादविवाद मुझसे संभव नहीं। इतना होने पर भी कोई ऐसा करने की इच्छा से उसका सामना करने का विचार करेगा, तो निश्चय ही उसका अपमान होगा, परन्तु महाराज! मेरा यह कथन सुनकर, आपको शंका होगी कि यदि ऐसा था तो मैं यहां क्यों आया? इसका कारण है कि भारतवर्ष में इस समय धारानगरी सरस्वती से पूर्ण है। सरस्वती के आप तथा सकलगुण सम्पन्न कालिदास महान् पात्र हैं, इससे आपके दर्शन की अधिक दिनों से अभिलाषा थी, वह आज पूर्ण हुई।

माधव शर्मा से कालिदास की इस प्रकार स्तुति सुनकर राजा प्रसन्न हुआ। पश्चात् राजा ने उस पंडित तथा उसके सम्पूर्ण शिष्यों का भली भांति सत्कार कर उन्हें बहुत सा द्रव्य दिया। कालिदास भी उन्हें अपने घर ले गया और खूब सत्कार किया। कुछ दिन वहाँ रहकर वह शिष्यों के साथ आज्ञा ले अपने नगर चला गया। उस दिन से उसके मन में कालिदास के प्रति पूज्यभाव उत्पन्न हुआ और वह अन्त तक बना रहा।

इस प्रकार कालिदास ने अपनी बुद्धि के बल से उस महान् पंडित को वश में कर लिया।

उस पंडित ने तथा कालिदास ने मिलकर जो श्लोक रचा था, वह इस प्रकार है:–

"परिपतति पयौनिधौ पतंगः
सरसिरुहामुदरेषु मत्तभृङ्गः ।
उपवनतरुकोटरे विहंगो
युवतिजनेषु शनैः शनैरनङ्ग ।।१।।"

अर्थात्–सूर्य समुद्र के भीतर गिरता है, मद से उन्मत्त हुए भौंरे कमल के भीतर बैठते हैं, पक्षी उपवन के वृक्षों की कोटर में निवास करते हैं और युवा स्त्रियों में धीरे–धीरे काम उत्पन्न होता है (यह संध्या समय का वर्णन है)।

कला ३३
(कालिदास और राक्षस की भेंट)

महाराज भोज ने नगर के बाहर उपवन में एक नया भवन बनवाया था। यद्यपि यह भवन सादा था, तथापि उसमें सब प्रकार का सुख था। पर उस भवन के तैयार होते समय उसमें एक ब्रह्मराक्षस बैठ गया। इससे उस भवन में जो कोई सोने को जाता, उसका वह भक्षण कर जाता था। इस बात की खबर राजा को होने पर उसने बड़े–बड़े मन्त्र जानने वालों को बुलाकर उस ब्रह्मराक्षस को भवन में से निकालने का प्रयत्न किया, परन्तु वह ब्रह्मराक्षस मंत्र जानने वालों को भी खाने लगा। बहुत लोगों ने उसे निकालने का प्रयत्न किया, पर वह नहीं निकल रहा था।

वह ब्रह्मराक्षस मनुष्य जन्म में याद की हुई कोई कविता कहा करता था, परंतु उसे समझकर कोई उत्तर न दे पाता था, जो उसका उत्तर न दे पाता, उसे वह खा जाता था। इस प्रकार थोड़े दिन व्यतीत होने पर राजा ने भवन बन्द करा दिया। यह देखकर कालिदास ने विचार किया कि, किसी तरह इस राक्षस को भवन से निकालना चाहिये। वह राजा से बोला–'महाराज! लगता है, यह ब्रह्मराक्षस मनुष्य जन्म में कोई बड़ा विद्वान् था। किसी कर्म के प्रभाव से यह राक्षस योनि में जन्मा है। इसलिए इसे मन्त्र से नहीं, वरन् शास्त्रार्थ से जीतना चाहिये। इस भवन में आज की रात मुझे सोने की आज्ञा दीजिये।

कालिदास की यह बात सुनकर राजा पहले तो इन्कार कर दिया, पर बाद में स्वीकार कर लिया।

कालिदास उस रात वहां सोया। प्रथम प्रहर में ब्रह्मराक्षस आया। उस राक्षस का नियम था कि जो कोई इस भवन में सोने को आता था, उससे एक सूत्र कहता था और यदि उसका मनमाना उत्तर नहीं मिलता था, तब वह मनुष्य को खा जाता था। उसी प्रकार कालिदास को सोता देखकर राक्षस बोला–"सर्वस्यद्वे" (सबके दो)

उसके मन की बात समझकर कालिदास ने उत्तर दिया–

"सुमतिकुमती संपदापत्तिहेतू" (सबके सुमति और कुमति यह दो संपत्ति और विपत्ति का कारणरूप हैं)।

यह सुनकर वह कुछ निराश हुआ और वहां से चला गया। जब दूसरा प्रहर आया, तब फिर आकर बोला–'वृद्धो यूना' (वृद्ध युवाके साथ)।

कालिदास ने उत्तर दिया–'सह परिचयात्यज्यते कामिनीभिः' (युवापुरुष के साथ परिचय हो, तो स्त्री वृद्ध को छोड़ देती है)।

फिर राक्षस निराश होकर वहां से चला गया।

तीसरा प्रहर होने पर वह फिर आकर बोला–'एको गोत्रे' (गोत्र में एक ही)।

कालिदास ने उत्तर दिया–'स भवति पुमान् यः कुटुंबं बिभर्ति (सम्पूर्ण कुटुम्ब में कुटुम्बपोषक तो एक ही पुरुष होता है)।

राक्षस फिर चला गया, चौथे प्रहर में वह फिर आकर बोला "स्त्री पुंवच्च" (स्त्री पुरुष के सदृश)।

कालिदास ने उत्तर दिया–"प्रभवति यदा तद्धि गेहं विनष्टम्" (स्त्री जब पुरुष के सदृश स्वतंत्र हो, तब घर का नाश हुआ समझना)।

इस प्रकार प्रश्नोत्तरों से एक श्लोक पूर्ण हो गया जैसे–

"सर्वस्य द्वे सुमतिकुमती संपदापत्तिहेतू
वृद्धो यूना सह परिचयात्त्यज्यते कामिनीभिः ।
एको गोत्रे स भवति पुमान् यः कुटुम्बं बिभर्ति
स्त्री पुवच्च्त्र प्रभवति यदा तद्धि गेहं विनष्टम् ॥१॥"

कि अपने चारों प्रश्न का उत्तर मिलने पर वह राक्षस चला गया और राजा वहा निवास करने लगा।

कला ३४

(पतिव्रता की पवित्रता)

एक दिन भोज राजा और कालिदास एकान्त में बैठकर वार्तालाप कर रहे थे। उसी समय महाराज को कोई बात याद आयी। उन्होंने कालिदास से

पूछा–'पंडितराज, हमारे देश में सतीशिरोमणि कोई स्त्री है?'

कालिदास ने कुछ समय तक विचार कर उत्तर दिया–'हे राजन्! आप सती स्त्रियों के बारे में पूछोगे तो बहुत मिलेंगी; परन्तु सती शिरोमणि तो एक ही है।

भोज ने पूछा–'वह कौन है!'

कालिदास ने उत्तर दिया–'इस नगर में शंकरशर्मा नामक ब्राह्मण रहता है, वह धनहीन होने पर भी किसी से कुछ नहीं मांगता है। उनकी स्त्री सतीशिरोमणि है। अपने पति को ही सर्वस्व मानने वाली वह स्त्री प्रातःकाल उठकर पति सेवा में ही लीन रहती है। उन्हें जो कुछ मिल जाता है, उसी में वे संतोष कर लेते हैं। वे अधिक मिलने की इच्छा नहीं करते। वह ब्राह्मण किसी से याचना नहीं करता, उसकी स्त्री अन्य पुरुष का मुख नहीं देखती और किसी दिन घर से बाहर नहीं निकलती, उस स्त्री के दर्शन होने भी दुर्लभ हैं।'

राजा बोला–'धन्य है उस सती को! निश्चय सतीशिरोमणि उसका ही नाम है। मुझे भी उसके दर्शन करने की अभिलाषा हैं, उसका दर्शन किस प्रकार होगा?'

कालिदास ने उत्तर दिया–'महाराज'! आपको उसका दर्शन होना दुर्लभ है, वह किसी के पास भी धन की याचना नहीं करता। अन्न के अतिरिक्त अन्य वस्तु नहीं लेता, उस ब्राह्मण को द्रव्य का लोभ दें तो उसकी स्त्री का दर्शन हो, परन्तु मुझे यह विश्वास नहीं है कि वह ब्राह्मण धन का लोभ करेगा।'

राजा ने कहा–'ठीक है, देखूंगा।'

फिर सभा में आकर राजा ने शंकर शर्मा को बुला भेजा। उसने राजसभा में आना स्वीकार कर लिया। जो विद्वान् राजसभा में जाता है, उसे राजा विशेष पारितोषिक देता है, यह बात वे स्त्री–पुरुष दोनों भलीभांति जानते थे। परन्तु राजा सभा में बुलाकर उन्हें दान दें, ऐसी उनकी कभी इच्छा नहीं हुई थी। किन्तु राजा का बुलावा आने पर शंकर शर्मा जाने को तैयार हुआ। उस समय उसकी स्त्री ने कहा–'हे स्वामी! राजा द्रव्य का दान दे तो नहीं लेना, क्योंकि द्रव्य से लोभ और मद होता है'।

वह ब्राह्मण स्वयं भी निस्पृह था। उसे भी यह बात अच्छी मालूम लगी। वह थोड़े समय में राजा के आदमी के साथ सभा में आया। उसे आता जानकर राजा ने उसे लाने के लिये पंडितो को भेजा। वे उसे सन्मानपूर्वक लाये। राजा को आशीर्वाद देकर अपने लिये रखे हुए आसन पर बैठाकर कुछ वार्त्तालाप करने पर भोज ने उस ब्राह्मण को देने के लिये मोहरों से भरे दो थाल मंगाये। थाल आने पर राजा ने ब्राह्मण को दिये, परन्तु जिस द्रव्य को लेकर प्रत्येक

मनुष्य की दरिद्रता दूर हो सकती है, वह द्रव्य उसने नहीं लिया। उसको न लेता देखकर राजा ने सोचा कि यह द्रव्य थोड़ा है इसलिए कोषाध्यक्ष को बुलाकर दो थाल और मंगाये। तत्काल थाल आने पर वे चारों थाल उसे दिये। उन्हें देखकर शंकर शर्मा बोला–'हे राजन! क्या आप समझ रहे हैं कि ये दो थाल थोड़े हैं, इससे मैंने नहीं लिये? आप ऐसा कदापि न समझिये; मुझे द्रव्य की इच्छा नहीं है, यह तो राजाओं को ही दीजिये। मेरा नित्यकर्म है, उससे जो मुझे मिल जाता है, मै उसी से प्रसन्न हूं। मुझे किसलिये यहां बुलाया है, सो कहिये? हम आपके सेवक हैं, आप हमारे स्वामी हैं, इसलिये आपके सब काम करने को हम उद्यत हैं।

भोजने कहा–'महाराज! आपके दर्शनों की इच्छा से आपको कष्ट दिया है। अब जब काम पड़ेगा तब बुलाऊंगा आप सुख से पधारियेगा।

यह कह उसे जाने की आज्ञा दी, दूसरे दिन कालिदास से राजा ने एकान्त में कहा–हे कालिदास! इस शंकर शर्मा की सती स्त्री का दर्शन जिस प्रकार संभव हो वह उपाय कहो।'

कुछ समय सोचकर कालिदास ने उत्तर दिया–हे राजन्! अब केवल एक ही उपाय है कि इस सती स्त्री का संन्यासी पर पूर्ण विश्वास है, इस कारण आप जो संन्यासी होकर उसके द्वार पर जायें, तभी उसका दर्शन होगा, अन्य कोई उपाय नहीं है।'

भोज ने कहा–'अरे संन्यासी तो क्या? और भी कोई बुरा वेष बनाना पड़े तो भी मैं बनाने को तैयार हूं।'

कालिदास ने कहा–महाराज! संन्यासी का वेष बनाने में मस्तक मुंडाना पड़ेगा।

राजा ने कहा–कोई हर्ज नहीं, परंतु उसका पति घर में होगा, वह मुझे पहचान लेगा।'

कालिदास बोला–'उसे यहीं जप करने में लगा दो, तो फिर यह भय नहीं रहेगा।'

कालिदास की युक्ति राजा को ठीक मालूम हुई। दो-तीन दिन बाद राजा ने शंकरशर्मा को बुलाकर कहा–'हे महाराज! आप जपतप में निपुण हैं, हमें यहां जप कराने हैं, वह आप भलीभांति करेंगे, इसलिए कल प्रातःकाल से यहां आकर आप जप करना।'

शंकरशर्मा ने पहले तो अस्वीकार किया, परन्तु राजा के आग्रह करने पर स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन प्रातःकाल से जप करने बैठ गया। राजा भोज बाद में अपना मुंडन कराकर गेरुआ वस्त्र पहनकर हाथ में कमण्डलु लेकर

अद्‌भुत संन्यासी बने। शंकरशर्मा के घर जाकर 'भिक्षान्नं देहि' कहकर खड़े रहे। उस समय शंकर शर्मा की पत्नी भोजन बना रही थी। उसने संन्यासी का शब्द सुनकर भीतर से ही उत्तर दिया कि महाराज! भोजन तैयार होने में कुछ देर है, इसलिये आप वृक्ष के नीचे बिराजिये। भोजन तैयार होने पर बुला लूंगी, परन्तु संन्यासी वेषधारी भोज ने हठ करके कहा—'मैं तो वहां बैठता नहीं, इसलिए यहां ही बैठा हूं। उनका यह हठ सुनकर ब्राह्मणी ने वहीं ही बैठ जाने को कहा। कुछ समय में भोजन तैयार हो गया। उस स्त्री ने पृथ्वी को स्वच्छ करके सब पदार्थ परोसे। उस दिन उसके यहां उत्तम आम आये थे। उन आमों का रस संन्यासी को देने का विचार किया था। संन्यासी से कुछ दूर आमों को धोकर पात्र में रस निकालने बैठी, वे सब आम रस से पूर्ण थे, परंतु एक आम में से भी रस नहीं निकल रहा था। यह देखकर वह बोली—हे फलो! तुम रस से परिपूर्ण हो, परन्तु रस को क्यों नहीं छोड़ते? मैं बाल्यावस्था से आज पर्यन्त पातिव्रत्य से रही हूं, मन में भी परपुरुष का ध्यान नहीं किया, फिर क्या हुआ? इस नगर का राजा भोज तो सत्यवादी था। क्या वह परदारा के साथ भूला हैं?' है?'

अब तो यह शब्द कहते ही आमों से जो धार छूटी, तो केवल दो आमों से ही पात्र भर गया। राजा भोज यह सब बैठा-बैठा देख और सुन रहा था। वह यह चमत्कार देखकर आश्चर्य में पड़ गया। परन्तु उसके चित्त में भय उत्पन्न हुआ कि इस सती ने मुझे पहचान लिया है, मेरा कपट समझ गयी है। अब तो क्षमा मांगनी चाहिये। यह विचार कर अपना दण्ड कमण्डलु छोड़कर राजा ने उस स्त्री के हाथ जोड़े और अपना अपराध क्षमा कराकर वहां से चल दिया। परन्तु उस सती ने रोककर कहा—'हे राजा भोज! आप भय मत कीजिये, हम आपकी प्रजा हैं, इससे आपकी सन्तान तुल्य हैं। मैं आपको अपने पिता के सदृश मानती हूं, आज बीस वर्ष हुए मेरा मुख परपुरुष ने कभी नहीं देखा था। आपको सत्यवादी जानकर मैंने अपना मुख खोला है। इससे मेरा पतिव्रतापन भंग नहीं हुआ और यदि आप भी परस्त्रीलम्पट होते तो इन आमों में से रस कदापि नहीं निकलता, परन्तु आप कपट करके केवल परीक्षा के लिये आये थे, इस कारण रस निकलने से रुकता था। अपने कपट का आपको पश्चात्ताप हुआ, इससे तत्काल रस निकल आया। अतएव भय न मानिये, यह सुन कर राजा वहां से चला आया।

कला ३५

(कान्ति कवि का दृश्य)

एक बार पहले कांति कवि के भेजे हुए श्लोक की कालिदास ने हंसी की थी, वह बात कांति कवि को याद आती तो वह दुःखी हो जाता था। किसी दिन इसका बदला लेकर कालिदास की कीर्ति को नष्ट करके और उसे पराजित करके अपनी कीर्ति बढ़ाने की उसकी सदैव इच्छा रहती थी।

एक दिन किसी को साथ न लेकर वह अकेला ही धारानगरी की ओर चला। धारानगरी कुछ दूर थी, रास्ते में एक भील कन्या मिली, उससे कांति कवि ने पूछा–हे कन्या! तू किसकी पुत्री है? कन्या ने उत्तर दिया–

"हर हर स्मरतेनित्यं बहुजीवप्रपालकः ।
अरण्ये वसते नित्यं तस्याहं कुलबालिका ।।१।।"

अर्थात्–हर हर शब्द करनेवाले बकरियों के समूह का पालन करता हुआ जो सदा वन में रहता है, उसकी मैं क्या हूं अर्थात् गड़रिये की कन्या हूं।

छोटी सी कन्या की यह चतुरता देखकर कांतिकवि आश्चर्य में पड़ गया। कुछ आगे और चलने पर एक ग्राम के समीप नदी से पानी भरने के लिये कई स्त्रियां आ रही थीं। उनमें से एक को पूछा–'हे भगिनी! तू कौन है? यह सुनकर उसने उत्तर दिया–

"चतुर्मुखो न च ब्रह्मा वृषारूढो न शंकरः ।
अकाले वर्षते मेघतस्याहं कुलबालिका ।।१।।"

अर्थात्–चार मुख हैं परन्तु ब्रह्मा नहीं, बैल के ऊपर आरूढ़ हैं परन्तु शंकर नहीं है, वर्षाकाल न होने पर भी जो जल बरसाने वाला है उसकी मैं कन्या हूं। अर्थात् भिस्ती की कन्या हूं।

उसकी चतुरता देखकर आश्चर्य में पड़कर दूसरी से भी वही प्रश्न किया, उसने उत्तर दिया–

"पञ्चभर्ता न पञ्चाली द्विजिह्वा न च सर्पिणी ।
वानरी न च कृष्णास्या तस्याहं कुलबालिका ।।१।।'?

अर्थात्–पांच स्वामी है परंतु द्रौपदी नहीं है, दो जीभ हैं परन्तु सर्पिणी नहीं है, मुख श्याम है परन्तु वानरी नहीं है, ऐसे कुल की मैं कन्या हूं अर्थात् हाथ में कलम लेकर लिखनेवाले कायस्थ की कन्या हूं।

यह सुनकर वह आनंदित हुआ और तीसरी स्त्री से भी यही पूछा, उसने भी उत्तर दिया–

"नित्यं जुहोति द्रव्याणि चौर्यकारी दिने दिने ।
शत्रुं मित्रं न जानाति तस्याहं कुलबालिका ।।१।।"

अर्थात्–जो प्रतिदिन द्रव्य का होम करनेवाला, चोरी करने में चतुर और शत्रु मित्र को समान मानने वाला है, उस कुल की मैं कन्या हूं अर्थात् सुनार की पुत्री हूं। तदनंतर चौथी स्त्री से वही प्रश्न किया, उसने उत्तर दिया–

"बाहुस्त्वस्ति शिरो नास्ति न मन्त्यंगुलिका दश ।
तस्योत्पत्तिकरो यस्तु तस्याहं कुलबालिका ।।१।।"

अर्थात्–जिसके केवल हाथ ही हैं मस्तक और दश अंगुलियां नहीं है, उसे उत्पन्न करनेवाली मैं कन्या हूं, अर्थात् दरजी की कन्या हूं।

यह सुनकर कवि आश्चर्य में भरकर सोचने लगा कि जिस नगर की हीन वर्णवाली स्त्रियां इतनी चतुर हैं, उसकी दूसरी स्त्रियां न जाने कितनी चतुर होंगी और कालिदास तो न मालूम कितना ही चतुर होगा। परंतु कुछ और भी चतुरता की परीक्षा करूं। उसके ऐसा सोचते ही एक स्त्री मिली। उससे पूछा–'हे भगिनी! तू कौन है?

उस स्त्री ने उत्तर दिया–

"निर्जीवो जीवितो वापिश्वासोच्छ्वासविशेषतः ।
कुटुम्बकलहो नास्ति तस्याहं कुलबालिका ।।१।।"

अर्थात्–निर्जीव होने पर जीवित सदृश श्वासोच्छ्वास लेनेवाला और जिसके कुटुम्ब में क्लेश नहीं उससे आजीविका करनेवाले की मैं कन्या हूं अर्थात् धोंकनी की भट्टी फूंकनेवाली लुहार की पुत्री हूं।

कांति कवि छोटी बड़ी प्रत्येक स्त्री को चतुर देखकर अत्यन्त विस्मय में डूब गया और कुछ दूर आगे जाकर फिर एक स्त्री से पूछा–'हे कन्या! तू कौन है?'

उसने उत्तर दिया–

"द्विराजा नगरी एका नित्यं युद्धं च जायते ।
तदुत्पत्तिकरो यस्तु तस्याहं कुलबालिका"

अर्थात्–एक नगर में दो राजा राज्य करते हैं और उनमें नित्य युद्ध होता है उसको उत्पन्न करनेवाली मैं कन्या हूं, सिंघाड़िये की कन्या हूं।

यह सुनकर दूसरी स्त्री से पूछा तो उसने उत्तर दिया–

"चक्रके न रथी सूर्या भूमौ तिष्ठति सारथिः ।
अगस्त्यताततनिर्माणस्तस्याहं कुलबालिका ।।१।।"

अर्थात्–एक पहिया है परन्तु सूर्य का रथ नहीं है और सारथि भूमि पर बैठा है, अगस्त्य ऋषि जिसमें से उत्पन्न हुए हैं उसको बनानेवाले की मैं कन्या

हूं अर्थात् कुम्हार की पुत्री हूं।

जब कवि नगरी में पहुंच गया, तब उसको एक माली मिला, उसके कपड़े में बंधे हुए कुछ फल थे, उन्हें देखकर उससे पूछा—'भाई! तेरे पास क्या है?'

उसने उत्तर दिया—

"वृक्षाग्रवासी न च राजहंसो,नाम्ना नरो वै न च राजपुत्रः ।
सुवर्णकायो न च हेमधातुस्तृणं च शय्या न च राजयोगी ।।१।।"

अर्थात्—वृक्षों में रहने वाला है परन्तु राजहंस पक्षी नहीं है, नाम में नर है परन्तु राजपुत्र नहीं है, सुवर्ण के सदृश कांति है परन्तु सोना नहीं है, तृणों की शय्या पर सोता है परन्तु राजयोगी नहीं है, ऐसे फल मेरे पास हैं अर्थात् आम हैं।

कुछ दूर चलने पर एक और मनुष्य मिला। उसके पास कुछ देखकर उससे पूछा—'भाई तेरे पास क्या है?' उसने उत्तर दिया—

"वृक्षस्याग्रे फलं दृष्टं फलाग्रे वृक्ष एव च ।
अकारादि सकारान्तं यो जानाति सपंडितः ।।१।।

अर्थात्—वृक्ष के ऊपर फल हैं और फल के ऊपर वृक्ष हैं जिसका प्रथम अक्षर "अ" है और अन्त का अक्षर "स" है, ऐसा फल मेरे पास है जो यह जानता है वही पंडित है। यह सुनकर वह फल क्या है? यह कांतिकवि न जान सका, परन्तु उसका नाम जानने की इच्छा थी। इससे उस माली को वह बहलाने लगा, खुशामद करता देखकर माली ने कहा—तू इतनी मनुहार बात कर रहा है, इसलिए तुझे बताता हूं। मेरे पास जो फल हैं, उसका नाम है 'अनन्नास'।

यह कहकर माली तो चला गया, पर कवि ने मन में सोचा कि अच्छा हुआ जो यहां मुझे कोई नहीं जानता है, कोई पहचानता होता, तो मानहानि होने में कितनी देर थी। यह सोच कर वह आगे चला। एक स्त्री मिली, उसके सिर पर रखी टोकरी में ढकी हुई कोई वस्तु थी, उसको देखकर कवि ने पूछा—'भगिनी! तुम्हारी टोकरी में क्या है?')

उस स्त्री ने उत्तर दिया—

"वृक्षाग्रवासी न च राजहंसो
नारी तु नाम्ना न च राजकन्या ।
बिभर्ति तोयं न च देवगङ्गा,
त्रिनेत्रधारी न च शूलपाणिः ।।१।।

अर्थात्—वृक्षों में रहता है परन्तु राजहंस नहीं है, नाम नारी है परन्तु राजकन्या नहीं है, बीच में पानी है परन्तु भागीरथी नहीं है, तीन नेत्र है परन्तु

शंकर नहीं है।

यह सुनकर कवि ने विचारा कि मुझे जितने स्त्री पुरुष मिले वे सब विद्वान् ही हैं, तो कालिदास की विद्वत्ता में क्या संदेह है? इस स्त्री की ही बात नहीं समझ सका तो पीछे उस पंडित को कैसे जीतूंगा?

फिर उस स्त्री से पूछा–'तुम्हारे पास क्या है, मैं नहीं समझ सका, कृपा करके बता दो?' स्त्री बोली–मेरे पास नारियल है।' यह कह हंसकर चल दी।

कुछ दूर जाने पर एक दूकान आयी। उस दूकान पर बैठा हुआ एक आदमी कुछ साफ कर रहा था, वह वस्तु क्या थी, न पहचाने पर कवि ने पूछा–'भाई यह क्या है? उसने उत्तर दिया–

"अर्धं वसति कैलासे ह्यर्धं गायकमन्दिरे ।
संपूर्णं वणिकागारे यो जानाति स पंडितः ।।१।।"

अर्थात्–इसका आधा भाग तो कैलास पर रहता है और आधा भाग गवैयों के घर में रहता है, परन्तु सम्पूर्ण भाग मेरी दूकान पर है, इसे जो जानता है वही पंडित है।

क्या वस्तु है, कवि न समझ सका। उसने पूछा–'भाई! यह क्या है मैं नहीं समझ सका। इसका नाम बताइये। उसने उत्तर दिया–इसको 'हरताल' कहते हैं। हर अर्थात् शंकर कैलाश पर रहते हैं और ताल गवैयों के यहां होती है।

यह सुनकर कान्तिकवि निराश होकर वहां से आगे चला। उसे अपने ज्ञान का अभिमान था वह सब जाता रहा। फिर कालिदास के घर गया और उसके पांवों में पड़कर बोला–हे पंडितराज! मैं कान्ति नामक कवि हूं, आपकी कीर्ति चारों ओर फैल रही है, उसको सुन कर मुझे बहुत दिनों से आपके दर्शनों की अभिलाषा थी, वह आज पूरी हुई।

कालिदास ने उसे तत्काल पहचान लिया कि मेरी निन्दा का श्लोक लिखकर भेजने वाला यही कवि है, परन्तु उसका इसे कुछ भी खेद नहीं।

कालिदास ने उस दिन कवि को अपने घर में रखकर उसका खूब सत्कार किया और दूसरे दिन राजा भोज से उसे मिलाया। कुछ दिन वहां रहकर कांतिकवि अपने नगर वापस आया।

कला ३६
(रजस्वला भार्या)

एक दिन राजा भोज रानी के भवन में गया। संयोग से उस दिन रानी रजस्वला थी, इस बात की राजा को खबर नहीं थी। दूसरे दिन राजा फिर उसके पास गया तो रानी ने आता देखकर हुँ हुं हुँहुं हुंहुँ हुँहूं' शब्द कहा, उसे सुनकर राजा उसका भावार्थ समझ गया और रानी से विना वार्तालाप किये ही लौट आया। दूसरे दिन सभा भरने पर राजा ने कहा—हूँहुं हुँहुं हुँहूं करोति यह श्लोक का चौथा चरण है, इसके प्रथम के तीन ऐसे चरण बनाओ कि जिससे इस पद्य का सम्बन्ध मिल जाये।

कुछ समय तक पंडित विचार करते रहे, जब कोई न बोला, तब कालिदास ने कहा—कि महाराज! सुनो—

भोजस्य भार्या ऋतुसंगयोगे एकाकिनी नारगृहे वसन्ती ।
सुस्पर्शकाले तु निजप्रियस्य हुँहुंहुँहुंहुँहुंहुँहुं करोति ॥१०॥

अर्थात्—राजा भोज की भार्या रजस्वला होकर एकांत में बैठी थी, उस समय राजा को मालूम न होने के कारण वे घर में चले गये, उनके स्पर्श के भय से मुख से अन्य शब्द न करके 'हुँहुंहुँहंहुँहंहुँहं' रानी ने कहा। मन की बात कालिदास ने कह दी, इससे राजा भोज अत्यन्त हर्षित हुआ और कालिदास को धन्यवाद दिया।

कला ३७
(रत्नों की चोरी)

एक दिन राजा भोज सभा में बैठा था, इतने में एक सेवक ने आकर बताया कि 'कोई चार परदेशी मनुष्य आये हैं, वे सभा में आना चाहते हैं। उनके वस्त्र साधारण होने पर भी, मुखपर तेज मालूम होता है। महाराज की क्या आज्ञा है?'

भोज ने उन्हें आने की आज्ञा दी। कुछ देर में सेवक उन्हें लेकर आ गया। उनको तेजस्वी और बलवान् देखकर सभा विस्मित हो गयी; उनके चेहरे की बनावट देख कर लगता था कि वे चारों सहोदर भाई हैं। नीति के अनुसार उन्होंने नमस्कार किया। राजा ने उन्हें आसन देने की आज्ञा दी। यह सुनकर उनमें से बड़ा बोला कि—"राजाधिराज! हम अपना न्याय कराने के लिये निकले हैं, यदि हमारा न्याय आप कर सकें तो हम बैठें, नहीं चले जायें'।

राजा ने पूछा–'तुम क्या न्याय चाहते हो?'

उनमें से बड़ा बोला–'हम चारों राजपुत्र हैं, हमारा राज्य बड़ा है, हमारे पिता ने मृत्यु के समय हमको राज्य बराबर–बराबर बांट दिया था। उस राज्य के साथ चार रत्न भी बांट दिये थे। चारों रत्न हमारे सामने भण्डार में रखवाकर उसमें ताला डलवा दिया और उसकी कुंजी हमें दे गये। अपनी मृत्यु के पश्चात् वह भण्डार खोलकर एक–एक रत्न हमें ले–लेने की आज्ञा दे गये थे। उनके मरण की क्रिया करने के बाद हम चारों रत्न लेने गये, तो भंडार खाली पाया। कुंजी हम चारों के पास ही रहती थी और विश्वासी मनुष्यों का भण्डार पर पहरा था, वे रत्न हम चारों के थे, इसलिए किसी ने वे रत्न चोरी कर लिये। परंतु आपसे इतनी विनती और है कि हमसे कोई प्रश्न नहीं करना, दूसरे हमको ताड़ना नहीं देना, तीसरे जिसके पास रत्न निकलें उसका नाम हमको अथवा किसी दूसरे को नहीं बताना अर्थात् गुप्त रखना। इस प्रकार हमारी तीन प्रार्थनायें हैं! यदि आपसे हो सके तो हल निकालो, नहीं तो हम जाते हैं।

भोज ने कुछ सोचकर कहा–तुम्हारा न्याय मैं कुछ दिनों बाद करूंगा, तब तक तुम यहीं रहो। राजा भोज का यह कथन सुनकर उनको कुछ आशा हुई।

भोज ने उनको सत्कारपूर्वक ठहराने की आज्ञा दी। सभा में उनके जाने पर राजा ने सोचा कि इनकी चोरी का पता किस प्रकार करना चाहिये। कुछ समय तक सोचते–सोचते उसे एक बात सूझी। उसने अपने मुख्य प्रधान बुद्धिसागर से कहा–'हे प्रधान! यह कार्य मैं तुम्हें सौंपता हूं। आठ दिन के भीतर इन रत्नों कि चोरी का पता करना'।

कुछ समय बाद सभा के विसर्जित होने पर सब अपने–अपने घर गये। प्रधान ने घर जाकर सोचा कि अब क्या करूं, ये चारों ही पक्के हैं। इनके साथ किसी प्रकार का कपट किये बिना कार्य नहीं चलेगा, परंतु कपट क्या करना चाहिये? अन्त में बुद्धिसागर ने कालिदास की राय लेने की सोची। तब तक उसे गहरी नींद आ गयी। प्रभात होते ही वह कालिदास के घर गया। अपने यहां वृद्ध प्रधान को आता देखकर कालिदास ने सत्कारपूर्वक बैठाया। प्रधान सद्गुणी था। कालिदास को मालूम था कि वह कार्य पड़ने पर बारंबार सम्मति लेने आता था और कभी किसी की बुराई में नहीं रहता था, इसी से उसके अधीन सभी काम थे। बुद्धिसागर ने कहा–'पंडितजी! कल उन राजकुमारों की चोरी का पता लगाने का काम राजा ने मुझे सौंपा है। वे राजकुमार अत्यंत चतुर हैं, उनकी चोरी का पता किस प्रकार लगाऊं, सो बताओ।' कुछ समय

तक विचार करके कालिदास ने कहा--'प्रधान! इस चोरी का पता लगाने का मुझे एक उपाय सूझता है, उस उपाय के अनुसार आप काम करेंगे, तो शायद कार्य सिद्ध हो जायेगा।' यह कहकर उसने अपना उपाय प्रधान को बताया। प्रधान को भी वह ठीक लगा। कालिदास ने फिर कहा–अब इस काम में तुम्हें पड़ने की आवश्यकता नहीं है, तुम्हारा बड़ा पुत्र चतुर है, उसे कल मेरे पास भेजना। इन राजकुमारों को पृथक्–पृथक् स्थानों में ठहरा दो और वे एक दूसरे से न मिल सकें, ऐसा प्रबन्ध कर दो'।

प्रधान वहां से सीधे उन राजकुमारों के पास जाकर कहा–'हे कुमारो! मैं तुम्हारे लिये स्थान का प्रबन्ध करता हूं, तुम्हें पृथक्–पृथक् रहना होगा। कोई एक दूसरे से नहीं मिल सकेगा, जब तक के लिए तुम्हें आज्ञा दी है–उसके अन्तिम दिन सभा में आना'।

ऐसा कहकर प्रधान वहां से चला गया और स्थान का प्रबन्ध करने लगा। कुछ समय में उसने योग्य स्थान ढूंढ़ लिया। प्रत्येक राजकुमार के लिये, चार चपरासी और एक सेवक नियत किया। अन्य कार्य करने के लिये और आदमी नियत कर उनको सत्कारपूर्वक रखा। राजकुमार अपने–अपने स्थानों में रहने लगे। यह सब बात प्रधान ने सभा के समय कालिदास को बता दी।

दूसरे दिन बुद्धिसागर प्रधान ने अपने बड़े पुत्र विद्यासागर को कालिदास के यहां भेजा। कालिदास ने उससे पूछा–'तुम्हारे पिता से मेरी जो बातचीत हुई है, तुम्हें ज्ञात होगी। उसी प्रकार प्रत्येक राजकुमार के साथ पहचान करनी चाहिये, कुछ जान–पहिचान हो जाये तो उन्हें शतरंज खेलने के लिए राजी कर लेना। शतरंज खेलने में तुम चतुर हो, मैं जो बात तुम्हें बताऊंगा, उसी प्रकार खेलना। उससे ही तुम उन रत्नों की बात जान लोगे।'

फिर दोनों ने वेष बदला और जहां बड़ा राजकुमार था, वहां गये। राजकुमार बाहर चौतरे पर बैठा था। इन दोनों ने जाकर उसे नमस्कार किया और एक ओर बैठ गये। फिर बातचीत शुरू की। बातचीत करते–करते शतरंज खेलने को कहा। राजकुमार को भी शतरंज आती थी। उसने कहा कि जो तुम्हें अवकाश हो, तो प्रारम्भ करो।

यह सुनकर कालिदास ने कहा कि हम भी इस नगर में आये हैं, यहां कुछ दिन रहने का हमरा विचार है, भोजन से निश्चिंत होकर रात्रि के समय आयेंगे। यह कहकर और कुछ बातें करने के बाद वे दोनों वहां से उठकर दूसरे राजकुमार के यहां आये। उसके साथ भी वार्तालाप कर, आने को कहकर चले गये।

इस प्रकार चारों के साथ जान–पहचान करके दोनों घर लौटे। उस दिन

रात को बड़े कुमार के यहां जाना स्वीकार कर आये थे, परन्तु वे गये नहीं। दूसरे दिन भी न जाकर रात को हम गये। प्रथम रात्रि को नहीं गये थे, इसका कारण पूछने पर कालिदास ने कहा–'हमारा एक भाई यहां से छ कोश दूर एक ग्राम में रहता है। वह कल कुछ कार्यवश आया और हमको लिवा ले गया, सो हम अभी ही वहां से लौटे हैं।'

कुछ देर बातचीत करने के बाद राजकुमार उन्हें भीतर ले गया और वहीं शतरंज खेलना प्रारम्भ किया। खेलते–खेलते विद्यासागर ने दीपक को ठीक करने के बहाने से उसे बुझा दिया। यह देखकर कालिदास से पूछा 'सेठ दीपक जलाने का चकमक है।'

राजकुमार बोला–'मेरे पास तो कुछ भी नहीं है, बाहर पहरेदार हो, तो देखो उसके पास शायद हो।' विद्यासागर ने बाहर जाकर देखा तो एक पहरेदार ऊंघ रहा था। उससे चकमक मांगा, परन्तु वह पहले से ही सिखाया हुआ था। उसके पास नहीं था। फिर किसी के दीपक से प्रज्वलित करने को कहा, परन्तु किसी के यहां दीपक जलता नहीं यह कहकर वह लौट आया। राजकुमार का खेलने का बहुत मन था और अपनी बाजी जीत में भी थी, परन्तु उपाय क्या था? दूसरे दिन खेलने के आने की बात कहकर विद्यासागर और कालिदास घर आ गये।

दूसरे दिन उसके यहां न जाकर वे लोग दूसरे के यहां गये। यहां भी ऐसा ही हुआ, परन्तु रत्नों का पता नहीं लगा। फिर तीसरे के यहां गये। वहां भी उन्होंने ऐसा ही किया। जो भी हो, शायद चौथा भाई चोर है। यह सोचकर सबसे छोटे भाई के यहां वे गये। वहां भी शतरंज खेलना प्रारंभ किया। पहले दिन विद्यासागर अत्यन्त चतुरता से खेला। तीसरा पहर होने पर विद्यासागर ने छोटे राजकुमार को जीत लिया। इस राजकुमार को खेलने का उत्साह बहुत था, पर विद्यासागर शतरंज का गुरु कहलाता था, जिससे उसके साथ खेलने में राजकुमार आनंदित होता था। दूसरे दिन वे दोनों फिर गये और नसीली वस्तु डालकर पान के बीड़े ले गये। उनमें नसीली वस्तु ऐसी डाली थी। कि जिसमें धीरे–धीरे नसा चढ़ता जाये। फिर खेलना प्रारम्भ किया। पहले तो विद्यासागर अच्छी तरह खेला, जिससे राजकुमार हारने लगा। फिर थोड़ी देर बाद विद्यासागर मोहरों की चाल चूकने लगा और राजकुमार की जीत होने लगी। कालिदास उस समय बार–बार विद्यासागर को और राजकुमार को पान देता जाता था। वह पहले दो पान उस नसीली वस्तु के दे चुका था। उसके नसे में राजकुमार अधिक उत्साह से खेलता था, परन्तु जीत होने के समय ही कालिदास ने दीपक सुधारने के बहाने उसे बुझा दिया। अपनी जीत के समय

दीपक बुझा देखकर राजकुमार क्रोधित हुआ और दीपक जलाने को कहा। कालिदास बाहर जाकर कुछ देर से लौटा और कहा कि–कोई द्वार नहीं खुला है, इससे दीपक नहीं जल सकता। थोड़ी देर विचार करके पीछे उस नसे में राजकुमार खड़ा हुआ और अपनी एक छोटी पेटी निकालकर कुछ वस्तु ले आया। उसके निकालते ही वहां प्रकाश हो गया। एक दीपक के बदले एक सौ दीपक के समान प्रकाश हो गया। कालिदास तथा विद्यासागर को विश्वास हो गया कि उन चुराये हुए रत्नों में से एक रत्न यह है। प्रकाश होने पर खेलना प्रारम्भ हुआ। कुछ समय में राजकुमार को पान और खिलाये इससे विशेष नसा होने पर वह अपनी शय्या पर गिर पड़ा। उस समय उसे कुछ ध्यान न रहा, यहां कालिदास तथा विद्यासागर ने वह पेटी निकालकर शेष तीन रत्न भी ले लिये और द्वार बंद करके पहरेदार को पहरा देने की आज्ञा देकर वहां से चले आये।

दूसरे दिन प्रातःकाल राजकुमार सोकर उठा और उसे रात्रि का ध्यान आने पर अपनी पेटी उघाड़कर देखा, तो वे रत्न नहीं मिले। अब क्या करे, इन रत्नों को किसी से 'नहीं मिले' यह भी नहीं कह सकता था। उसकी हालत चोर के सदृश हो गयी। चुपचाप विद्यासागर ने चारों रत्न अपने पिता को दिये। आठ दिन पूरे होने पर चारों राजकुमार राजसभा में आये। उनको देखकर भोज को उनकी बात याद आयी और बुद्धिसागर से पूछा–'प्रधानजी! इन राजकुमारों को दी हुई अवधि पूर्ण हो गयी, अब इन्हें क्या उत्तर देते हो?'

बुद्धिसागर ने विनयपूर्वक उत्तर दिया–'राजाधिराज इनका न्याय आप ही करेंगे फिर राजकुमारों की ओर फिरकर पूछा कि अपने रत्नों को तुम लोग पहचानते हो?'

चारों ने कहा–'हां'

प्रधान ने अपने पास के रत्नों को निकालकर दिखाया–'ये तुम्हारे रत्न हैं'।

अपने रत्न मिल गये देखकर राजकुमार आनन्दित हुए, परन्तु अपने वचन के अनुसार किसके पास से निकले, यह नहीं पूछा। बुद्धिसागर तक को भी ज्ञात नहीं था कि चोर कौन है?

यह तो केवल कालिदास और विद्यासागर ही जानते थे, फिर उन राजकुमारों को कुछ दिन रखकर अपने देश जाने की आज्ञा दी गयी।

इस विकट न्याय को सुनकर भोज की कीर्ति बहुत बढ़ गयी।

कला ३८
(राज्यदान)

एक दिन जब सभा पूरी भर गयी थी, तब एक विद्वान् ने सभाद्वार पर आकर कहा कि 'हे द्वारपाल! मैं महाराज भोज का दर्शन करना चाहता हूं।' द्वारपाल ने कहा कि महाराज! जरा ठहरो मैं आज्ञा लेकर आता हूं, फिर द्वारपाल ने जाकर पूछा कि–'महाराजाधिराज! बाहर कोई विद्वान् आये हैं, वे आपके दर्शन की अभिलाषा करते हैं।'

यह सुनकर भोज ने कहा कि, प्रतिहार! क्या तुझे मालूम नहीं कि मेरी सभा में किसी विद्वान् के आने की मनाही नहीं है। फिर किस कारण तूने उन्हें बाहर खड़ा रखा?

यह सुनकर प्रतिहार ने उत्तर दिया कि–'महाराज! मेरा अपराध हुआ; भविष्य में ऐसा कभी न होगा।'

भोज ने कहा–'ठीक है, उन्हें भीतर लाओ।'

प्रतिहार प्रणाम करके चला गया और विद्वान् को लेकर भीतर आया। उसकी विद्वत्ता देखने के लिये राजा चुप बैठा रहा।

उस विद्वान् ने भीतर आते ही यह श्लोक पढ़ा–

"राजन् दौवारिकादेव प्राप्तवानस्मि वारणम् ।
मदवारणमिच्छामित्वत्तोऽहं जगतीपते ।।१।।'

अर्थात्–हे राजन्! मैं तुम्हारे द्वारपाल से वारण (वर्जित होने से) को प्राप्त हो गया था, परंतु अब मैं तुम्हारे पास से मनोन्मत्त वारण (हाथी) लेने की इच्छा रखता हूं; क्योंकि (वर्जना और हाथी) ये 'वारण' के दो अर्थ हैं।

यह श्लोक सुनकर भोज आनंदित हुआ, वह पूर्व दिशा की ओर मुख किये बैठा था, इससे पूर्वदिशा की ओर का राज्य उसने ब्राह्मण को मन से दे दिया। पश्चात् वह (राजा) दक्षिण की ओर मुख करके बैठ गया!

यह देखकर वह ब्राह्मण आश्चर्य में पड़ गया। राजा के मन की बात वह जान न सका, उसने राजा के मुख की ओर जाकर दूसरा श्लोक कहा–

"अपूर्वेयं धनुर्विद्या भवता शिक्षिता कुतः ।
मार्गणौघः समायाति गुणो याति दिगंतरम् ।।१।।"

अर्थात्–यह अपूर्व धनुर्विद्या कि, जिससे मार्गणौघ (बाणों का समूह) पास आता है और गुण (प्रत्यंचा डोरी) दूर जाती है, सो तुमने कहां से सीखी?

क्योंकि धनुष के खेंचने से मार्गण (बाण) तो दूर जाता है और गुण-(डोरी) आगे आती है। यहां 'मार्गणौघ' और 'गुण' इन दो शब्दों के दो-दो अर्थ हैं जैसे 'मार्गगौण' याचक-समूह और बाणसमूह। 'गुण' यशरूप और डोरी।

यह सुनकर भोज अधिक आनंदित हुआ, उसको अपने मन से दक्षिण दिशा का राज्य भी अर्पण कर दिया और पश्चिम दिशा को अपना मुख कर लिया। यह देखकर कवि उस ओर जाकर बोला-

"सर्वज्ञ इति लोकोऽयं भवन्तं भाषते मृषा ।
पदमेकं न जानासि वक्तुं नास्तीति याचके ।।१।।"

अर्थात्-हे राजन्! आपको ये लोक सर्वज्ञ कहते हैं, यह असत्य कहते हैं, क्योंकि 'नहीं' शब्द तुम याचकों को कहना कब जानते हो अर्थात् नहीं जानते हो।

यह सुनकर राजा और भी आनंदित हुआ, पश्चिम दिशा का देश भी कवि को दे दिया और आप उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठ गया, उस ओर जाकर भी कवि बोला-

'सर्वदा सर्वदोऽसीति मिथ्या त्वं स्तूयसेजनैः ।
नारयो लेभिरे पृष्ठं न वक्षःपरयोषितः ।।१।।'

अर्थात्-कवि और पंडित आपका सर्वदा कीर्तन करते हैं कि 'तुम सदा सब वस्तुओं को देते हो'। उनका यह कथन असत्य है, क्योंकि आज तक तुम शत्रुओं को पीठ और परस्त्रियों को वक्षस्थल नहीं देते (आप युद्ध में पीठ नहीं दिखाते अर्थात् आगे बढ़ते हो और परस्त्री नहीं भोगते हो इससे आपका जितना कीर्तन किया जाये, थोड़ा है)।

अपनी सम्पूर्ण पृथ्वी इस कवि को दी हुई जानकर राजा सिंहासन से उठकर खड़ा हो गया, परन्तु वह कवि उनके मन का अभिप्राय न समझ सकने के कारण फिर बोला-

राजन् कनकधाराभिस्त्वयि सर्वत्र वर्षति ।
अभाग्यच्छत्रसंछन्ने मयि नायांति बिंदवः ।।१।।

अर्थात्-हे राजन! तुम सम्पूर्ण स्थानों में सुवर्ण की वर्षा वर्षाते हो, परंतु मेरे ऊपर अभाग्यरूपी छत्र है, अतः मेरे ऊपर थोड़ी बूंदें भी नहीं पड़तीं।

राजा उसका उत्तर न देकर अन्तःपुर में चला गया। इस प्रकार कुसमय अपने पास आये हुए राजा को देखकर रानी आश्चर्य में पड़ गयी। राजा ने कहा-हे रानियों! मैंने अपना राज्य एक कवि को दे दिया, इसलिये इस देश को छोड़कर अन्य देश को चलें।

इधर कवि अपने को राजा ने कुछ नहीं दिया जानकर दुःखी हुआ और

सभा से जाने लगा, उस समय बुद्धिसागर प्रधान ने पूछा–'हे कविराज! राजा ने तुम्हें क्या दिया।'

कवि ने उदास मुख से उत्तर दिया–'राजा ने मुझे कुछ भी नहीं दिया।'

बुद्धिसागर ने पूछा–तुमने जो श्लोक राजा को सुनाये, उन्हें मुझसे फिर कहो।

कवि ने कहा–अब फिर श्लोक पढ़ने से क्या लाभ!

बुद्धिसागर ने कहा–मुझे सुनाओ तो सही।

बुद्धिसागर के बार–बार कहने से कवि ने पांचों श्लोक फिर सुना दिये। चतुर प्रधान समझ गया कि राजा ने इसको सम्पूर्ण राज्य दे दिया है। फिर कवि ब्राह्मण से कहा–'पंडितजी! तुमको राजा ने जो कुछ दिया है, उसके मैं एक लक्ष टके देता हूं, कहो बेचते हो।'

कवि ने सोचा मुझे राजा ने कुछ नहीं दिया और यह प्रधान एक लक्ष टके देता है, आनन्दित होकर कवि ने कहा–'प्रधानजी! मुझे जो कुछ दिया है उसको तुम्हारे हाथ एक लक्ष टकों में बेचा।'

यह सुनकर वृद्ध प्रधान ने तुरन्त उस ब्राह्मण को कोश में से एक लक्ष टके दिलवा दिये। लक्ष टके लेकर आनन्दित हो कवि चला गया। फिर प्रधान राजा के पास गया और उसे देश छोड़कर जाने की तैयारी करता देखकर पूछा'महाराज! कहां जाने की तैयारी कर रहे हैं?'

राजा बोला–'प्रधानजी! आज उस आये हुए पंडित को मैंने अपना राज्य दे दिया है इस कारण यह देश छोड़कर जाने की मैं तैयारी कर रहा हूं।'

प्रधान ने बताया–'महाराज! अब ऐसा करने की आवश्यकता नहीं रह गयी, वह कवि एक लक्ष टके लेकर यह राज्य बेच गया, उसको मैंने कोश में से टके दिलवा दिये हैं। उन्हें लेकर कवि चला गया। अब आपको यहां से जाने की आवश्यकता नहीं है।'

बुद्धिसागर की यह बुद्धिमत्ता देखकर राजा बहुत ही आनन्दित हुआ।

कला ३९
(पुष्प परीक्षा)

एक बार कौतुक देखने के लिये भोज ने अपने एक शिल्पकार को नकली पुष्पों का हार बनाने की आज्ञा दी। उसने ऐसा हार बनाया कि वह असली पुष्पों का ही ज्ञात होता था। जब नकली हार तैयार होकर आया, तब भोज ने उसी तरह का असली हार बनाने की आज्ञा दी। दोनों हार एक से ही बने। दूर से कोई नहीं कह सकता था कि इनमें से एक नकली है, केवल हाथ में लेने से

ही मालूम होता था। सभा का समय होने पर एक आदमी के हाथ में वे दोनों हार देकर राजा ने खड़ा कर दिया। सभा भरने के पश्चात् राजा ने कहा–'ये दो हार हैं, इनमें एक नकली और एक असली पुष्पों का है, अब बिना हाथ लगाये बताओ कि कौनसा नकली है!'

सब विचार में पड़ गये कि राजा को क्या उत्तर दें। कुछ देर बाद कालिदास बोला–'राजाधिराज! भीतर अंधकार होने से मुझे हार नहीं दीखते, यदि उस व्यक्ति को बाहर खड़े होने की आज्ञा दें, तो देखकर बता सकता हूं।

कालिदास की चतुरता न समझकर राजा ने हार पकड़े हुए आदमी को बाहर खड़े होने की आज्ञा दी। उसके बाहर आने पर उड़ती मक्खियां असली हार पर बैठ गयीं और नकली हार पर एक भी नहीं बैठी। यह देखकर कालिदास ने कहा–'हे राजन्! देखो जिस हार पर मक्खियां बैठी हैं, वह हार असली है और जिस पर नहीं बैठीं, वह नकली पुष्पों का हार है।' कालिदास की चतुरता देखकर सब सभा आनंन्दित हो उठी।

कला ४०

(कालिदास का अपमान)

एक बार किसी बात पर राजा भोज ने कालिदास का अपमान कर दिया। अपमान होने पर कालिदास अपने घर चला गया। राजा के मन में भी उस समय कालिदास के प्रति द्वेष था, इससे उन्होंने उसे नहीं बुलवाया। कालिदास ने थोड़े दिनों तक राजा के बुलावे की बाट देखने का निश्चय किया सोचा कि यदि वह नहीं बुलायेगा तो फिर उसका मुख न देखूंगा।

यह सोचकर थोड़े दिन उसने राजा के बुलाने की बाट देखी, परन्तु कोई बुलावा नहीं आया। तब उसने गुप्त रहने का विचार किया। अब तो राजा का मुख नहीं देखूंगा यह निश्चय कर वह अपनी वेश्या के यहां गया और उससे अपने मन की बात कही कि–'मेरा विचार अब गुप्त रहने का है, जब किसी समय राजा को भी मेरी आवश्यकता होगी, तब वे मुझे ढूंढ़ेंगे, परन्तु मैं किसी प्रकार खबर नहीं करूंगा, यदि अपने घर में मैं रहूंगा, तो वह मुझे बुला लेगा, परन्तु कहीं छिपकर रहूंगा तो कोई नहीं जानेगा। दिन को मैं वन में किसी वेष से फिरूंगा, परन्तु रात्रि के समय तेरे यहां आ जाया करूंगा, तू यह बात किसी से मत कहना।'

वेश्या ने ऐसा ही किया और कवि कालिदास को अपने घर में रख लिया। दिन में वह वेष बदलकर वन में चला जाता था और रात को सोने के लिये आ जाता था। इस प्रकार छह महीने बीत गये। कालिदास के विना राजा बेचैन

रहने लगा। उसने कालिदास के घर खबर की,तो मालूम हुआ कि वे तो छह महीने से बाहर गये हुए हैं। पहले भी तीन बार ग्राम में ही छिप रहा था, इससे राजा को लगा कि वह नगर में ही होगा। उसने उसके स्थानों पर बहुत ढुंढ़वाया, बहुत इनाम देने को कहा, परन्तु उसका पता नहीं लगा। अन्त में राजा ने ऐसी युक्ति निकाली कि एक श्लोक के पूर्वार्द्ध के दो पद बनाये और उसका उत्तरार्द्ध बनाने वाले को इनाम देने की मुनादी पिटवा दी। अपनी सभा के पंडितों को सख्त हिदायत दे दी कि तुममें से इसका उत्तरार्द्ध कोई भी नहीं कहना।

श्लोकपूर्वार्ध–"कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न च दृश्यते ।

सम्पूर्ण नगर में यह पूर्वार्द्ध प्रकाशित किया गया। जिस वेश्या के घर में कालिदास था, उसने विचार किया कि यह श्लोक कालिदास से पूर्ण कराऊं परन्तु उसको राजा के इनाम की बात कहूंगी तो वह तुरंत समझ जायेगा। फिर दूसरी किस रीति से कहूं। कालिदास के आने के समय उनका सत्कार करने के लिये वेश्या तैयार होकर बैठ गयी। कालिदास के आने पर कोई बात न कहकर बोली–'हे पंडितराज!'

"कमलेकमलोत्पत्तिः श्रूयते न च दृश्यते ।"

अर्थात्–कमल के ऊपर कमल उत्पन्न हुआ हो, ऐसा सुना भी नहीं और देखा भी नहीं।

यह सुनकर कालिदास ने उत्तर दिया–

''बाले तव मुखाम्भोजे दृष्टमिन्दीवरद्वयम् ।।१।।'

अर्थात्–हे स्त्री! तेरे मुखकमल पर नेत्ररूपी दो कमल दीखते हैं?

अपने श्लोक का उत्तरार्द्ध मिल जाने पर वह आनन्दित हुई। दूसरे दिन कालिदास तो वन को चले गये। सभा होते ही वह वेश्या सभा में गयी और कहा–'महाराज! आपके श्लोक का उत्तरार्द्ध मैं लायी हूँ।' यह कहकर कालिदास का कहा हुआ उत्तरार्द्ध उसने पढ़ दिया।

यह सुनते ही भोज को विश्वास हो गया कि ये शब्द इस वेश्या के नहीं हैं, परन्तु किसी पुरुष के ही हैं। और निश्चय ही कालिदास के ही हैं। पश्चात् राजा ने वेश्या से पूछा–'यह श्लोक तुझे किसने पूर्ण करके दिया है?'

वेश्या ने उत्तर दिया–'महाराज! यह मैंने स्वयं ही किया है।' राजा किंचित् क्रोधित होकर बोला–नहीं! यह श्लोक तेरा किया हुआ नहीं है, किसी पुरुष ने तुझे बनाकर दिया है।

वेश्या कुछ घबराकर बोली–'नहीं महाराज! यह मेरा ही किया है।

राजा ने कहा–तू फिर भी असत्य बोलती है, तूने मेरा पूर्वार्द्ध किसी पुरुष से

पूछा है और उसने तुझे उत्तर दिया है। यदि तेरा किया होता तो बाले' ऐसा तू अपने को क्यों कहती, किसी पुरुष ने तुझे उत्तर दिया है और कहने वाला भी कालिदास ही है। कहो सत्य?

यह सुनकर वेश्या घबरा गयी, परन्तु कुछ धैर्य धरकर बोली—'महाराज कालिदास कहां हैं, यह मैं नहीं जानती।

राजा ने अधिक क्रोध में भरकर कहा—'जो तू सत्य नहीं कहेगी, तो मैं तुझे दण्ड दूंगा।

'अब सत्य बात कहे बिना नहीं चलेगा' यह विचार कर वेश्या बोली—'एक प्रहर रात्रि होने पर कालिदास मेरे घर आते हैं, उस समय आप पधारें तो उनके साथ आपका मिलना संभव होगा, परन्तु यह खबर मैंने आपको दी है, यदि वे यह समझ जायेंगे तो फिर मेरे यहां नहीं आयेंगे।

राजा ने कहा—'तू इसकी चिंता मत कर'।

फिर उसे इनाम देकर बिदा किया। रात्रि का समय होने पर राजा भोज उसके घर गया और बाहर से आवाज दी, इतने में कालिदास ने भोज का शब्द पहचान लिया और बोला—'अरे मैं कैसा मूर्ख हूं, जो वेश्या के ऊपर विश्वास कर बैठा, खैर जो भवितव्य था सो हुआ, परन्तु मेरा मस्तक तो इसे मत बताना।

यह सुनकर वेश्या बोली—महाराज! इसमें मेरा कुछ अपराध नहीं, राजा ने स्वयं ही आपको ढूंढ़ा है, क्योंकि वे आपको चाहते हैं, अब उनसे क्यों छिपते हो।

कालिदास ने कहा—मेरे मन का विचार बदल नहीं सकता, मैं राजा को मुख नहीं दिखाऊंगा। तू द्वार न खोलेगी तो राजा तोड़कर भीतर आ जायेगा। इसलिए तू मेरा मस्तक काट दे। वेश्या स्त्री जाति थी, उसे साहस नहीं हुआ। फिर कालिदास अपने हाथ से खड्ग लेकर काटने ही जा रहा था कि वेश्या ने द्वार खोल दिया। राजा बाहर खड़ा-खड़ा ही बात सुन रहा था। उसने मन में सोचा कि अहो! यह कैसा वचन पालक है, यदि सम्पूर्ण पृथ्वी में देखूंगा तो भी ऐसा मनुष्य नहीं मिलेगा, मैं ही मूर्ख हूं, जो बार बार इसका अपमान करता हूं। अपने मन की बात मैं किससे कहूंगा? जब यह नहीं मानेगा, तो मैं जीकर क्या करूंगा?

यह कहकर राजा ने भी खड्ग निकाल लिया और भीतर आया तब देखा कि कालिदास अपना मस्तक काटे ही डाल रहा है, तब झट से कालिदास का हाथ पकड़ लिया और हाथ जोड़कर अपना अपराध क्षमा कराया। अब परस्पर इतनी प्रीति जानकर दोनों के नेत्रों से अश्रुपात होने लगा। भोज ने कालिदास

को गले लगाकर बहुत समय तक पश्चात्ताप किया और फिर बड़े समारोह के साथ कालिदास को अपने साथ ले आया।

कला ४१

(रामशेखर कवि का चरित्र)

एक बार राजा भोज धारानगरी से हाथी पर सवार होकर कुछ आदमियों के साथ वन में क्रीड़ा करने के लिये जा रहा था। उसी समय उसने देखा कि मार्ग में एक अत्यन्त दरिद्र पुरुष भूमि पर पड़े हुए अन्न के दानों को बीन रहा था। राजा ने उस दरिद्री मनुष्य को देखकर निम्नलिखित आधा श्लोक कहा–

श्लोकपूर्वार्ध–'नियउदरपूरनम्मिय असमर्त्थाकिंपि तेहिं जाएहिं ।'

अर्थात्–जो अपना उदर पोषण करने में भी असमर्थ है, ऐसे पुरुष का पृथ्वी पर उत्पन्न होना या न होना बराबर है, अर्थात् ऐसे पुरुष उत्पन्न हुए तो क्या? और न हुए तो क्या?

इस प्रकार राजा भोज के श्लोक का पूर्वार्ध सुनकर उस मनुष्य ने उसका उत्तरार्द्ध नीचे लिखे अनुसार कहा–

श्लोक उत्तरार्ध–'सुसमर्त्था विहुनपरोपरिणोतेहिं विनहिं किंपि ।।१।।

अर्थात्–जो पुरुष समर्थ होकर भी अन्य पुरुषों का उपकार नहीं करते, उनका भी पृथ्वी पर उत्पन्न होना अथवा नहीं होना बराबर है, अर्थात् ऐसे पुरुष उत्पन्न हुए तो क्या? और न उत्पन्न हुए तो क्या?

ब्राह्मण का ऐसा सम्भाषण सुनकर राजा भोज ने फिर कहा–

श्लोकपूर्वार्द्ध–'परतत्थणावत्तंमाजणणिजणसुएरिसंयुत्तम'

अर्थात्–जो अन्य मनुष्यों से भिक्षा मांगकर अपना उदरपोषण करते हैं, उन पुरुषों को हे जगत् को उत्पन्न करने वाली योगमाया! तू उत्पन्न मत कर।

इस प्रकार राजा का आधा श्लोक सुनकर उसके प्रत्युत्तर में ब्राह्मण फिर बोला–

श्लोकोत्तरार्द्ध–'मापुहविमाधरिज्जसुपत्थण भंगोकओ जेहि ।।१।।'

अर्थात्–हे धरती माता! जिसने याचक की प्रार्थना को भंग किया है, ऐसे पुरुष को तू किस प्रकार धारण कर रही है? प्रार्थना के भंग करने वाले पुरुष भार से तू रसातल में क्यों नहीं चली जाती, तू किस प्रकार लोक को धारण कर रही है?

इस प्रकार ब्राह्मण के वचन सुनकर राजा ने उससे पूछा कि तुम इतने बड़े

विद्वान् होकर भी ऐसी दुर्दशा में क्यों पड़े हो? तब ब्राह्मण कहने लगा कि हे राजेन्द्र! तुम्हारा राजद्वार सदैव अनेक प्रकार के पंडित रूपी मेघों से अच्छादित रहता है, इस कारण वहां प्रवेश करने के लिये अन्य कोई मार्ग न मिलने से नगर के प्रधान पुरुषों को इस मार्ग से जाता देखकर यहां आकर बैठा हूं।

इस प्रपंच में आपके दर्शनों की अभिलाषा करने वाला मैं राजशेखर नामक कवि हूं।

कवि के ऐसे वचन सुनकर राजा तत्काल हाथी पर से उतर पड़ा और अपना हाथी कविराज को समर्पित कर दिया और बहुत से आभूषण भी दिये। राजशेखर मन में विचार करने लगा कि–गजदान ग्रहण करने में महापाप है, किन्तु आपद्धर्म में राजा भोज ने हाथी दिया, इसलिये ठीक है। परन्तु इस हाथी को बांधूं कहां और इसको सदैव खिलाऊंगा कहां से? ऐसा मन में सोचकर उसने राजा से निम्नलिखित श्लोक कहा कि–हे भूपेन्द्र!

"निर्वाता न कुटी न चाग्निशकटी नापि द्वितीया पटी,
वृत्तिर्नारभटी न तुन्दिलपुटी भूमौ च घृष्टा कटी।
तुष्टिर्नैकघटी प्रिया न वधुटी तेनाप्यहं संकटी,
श्रीमद्भोज तव प्रसादकरटी भङ्क्त्वा ममापत्तटीम् ।।१।।'

अर्थात्–मेरी एक छोटी सी झोपड़ी है और उसमें चारों ओर से खूब पवन आता है तथा तापने के लायक फूस आदि भी नहीं है और पहरने ओढ़ने के तथा हर एक काम में लाने के लिये केवल एक ही वस्त्र है, इसके सिवाय और कोई वस्त्र नहीं है तथा पढ़ने और पढ़ाने के सिवाय मेरी कोई दूसरी वृत्ति भी नहीं है और जाड़ों में ओढ़ने के लिये मेरे पास गुदड़ी तक नहीं है, एवं पृथ्वी पर लोट–लोटकर तथा कमर को घिस–घिसकर रात व्यतीत करता हूं। अन्न पेटभर न मिलने के कारण एक घड़ी भी संतोष नहीं होता और निद्रा भी पूरी नहीं आती और इस दरिद्रता के कारण कुलीन स्त्री भी नहीं मिली, किन्तु कुलक्षणी स्त्री मिलने के कारण उसके निरन्तर वचनरूपी बाणों से मेरा हृदय बींधा रहता है, इस कारण हे धारापति! आप प्रसन्न होकर अपना दिया हुआ यह गजेन्द्र मुझसे वापस लेकर मेरी इस आपत्तिरूपी नदी तट को अपने दानहस्ति से विदारण करो। इस प्रकार इस कवि के अर्थयुक्त इस काव्य के ग्यारह अनुप्रास के शब्दों को सुनकर राजा भोज ने इसको ग्यारह हजार मोहरें देकर संतुष्ट किया।

कला ४२
(संकर्षणब्राह्मण का चरित्र)

प्रतापगढ़ नाम के नगर में संकर्षण नाम वाला एक अत्यन्त दरिद्री ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम कमलादेवी था। वह अत्यंत साध्वी और पतिव्रता थी। एक दिन कमलादेवी अपने पति से प्रार्थना करने लगी कि हे प्राणवल्लभ! आप विद्वान् होने पर भी इस दरिद्रता को भोग रहे हो केवल भाग्य के ऊपर रहकर निरुद्यमी बैठे रहना ठीक नहीं है, थोड़ा बहुत उद्यम अवश्य करना चाहिये, क्योंकि विद्वानों का वचन है कि–

"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवं प्रधानमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं विहाय कुरु पौरुषमात्मशक्त्या यत्ने कृते यदि न सिध्यति
कोऽत्र दोषः ।।

अर्थात्–उद्योग करने वाला मनुष्य पुरुषों में सिंह के समान है। उद्योगी पुरुषों को लक्ष्मी प्राप्त होती है, निरुद्योगी (कायर) पुरुष प्रारब्ध को प्रधान मानते हैं, इसलिए वे दैव को छोड़कर उद्योग करना उचित है और यदि (उद्योग) करने से भी फल की प्राप्त न हो, तो फिर अपना क्या दोष?

फिर 'उद्योगे नास्ति दारिद्रयम्' उद्योग करने से दरिद्रता नष्ट होती है, इस कारण उद्योग के विना खाली बैठे रहना उचित नहीं है तथा आप विद्वान् भी हैं, इससे आपकी सर्वत्र मान्यता होगी और आपकी विद्या की प्रशंसा को सिवाय महान् पुरुष के अन्य कोई नहीं जान सकता, क्योंकि कहा है–

'अनर्घ्यमपि माणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते ।
अनाश्रया न शोभन्ते पंडिता वनिता लताः ।

अर्थात्–माणिक्य (पद्मराग) अत्यंत उत्कृष्ट है, किन्तु सुवर्ण के आश्रय के विना शोभा को प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार पंडित, स्त्री और लता यह आश्रय के विना शोभा को प्राप्त नहीं होते और न वृद्धि को ही प्राप्त होते हैं।

आप विद्वान् होने पर भी बड़े मनुष्यों का आश्रय नहीं ग्रहण करते इसलिए आपकी सब विद्या निष्फल होती रही है। आप से विनती करती हूं कि यहां से थोड़ी दूर धारानगरी में विक्रमवंशी सिंधुल राजा का पुत्र महाप्रतापी राजा भोज राज्य करता है, वह गौ ब्राह्मण प्रतिपालक और विद्वानों को आश्रय देता है। उसके पास जाकर आशीर्वाद देकर उससे याचना करो। हे स्वामिन्! ये छोटे–छोटे बालक दूध के लिये तड़फते हैं और हम दोनों भी विना अन्न के तीन

तीन दिनों तक रह जाते हैं, यह क्या थोड़ा दुःख है? राजा के पास से एक दो गाय या भैंस मांग लाओ तो ठीक है। इस प्रकार स्त्री के वचनों को सुनकर संकर्षण ब्राह्मण भोज राजा के दर्शन करने के लिये प्रतापगढ़ को चला। फिर मन में विचार करने लगा कि राजा को भेंट करने के लिये कोई वस्तु हाथ में अवश्य रखनी उचित है, कहा भी है कि–

'रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं देवतां गुरुम् ।।''

अर्थात्–राजा, देवता और गुरु इनके निकट खाली हाथ नहीं जाना चाहिये।

इस कारण एक श्रीफल (बेल) हाथ में लेकर धारानगरी में प्रवेश किया। संकर्षण ने मन में विचारा–भोज शिवभक्त है। उसे प्रिय लगे ऐसा उत्तम श्लोक बनाकर उसे प्रसन्न करूं। ऐसा विचारकर वह राजदरबार में गया। वहां जाकर कालिदास आदि चौदहसौ पंडितों का समूह देखकर संकर्षण कुछ घबराया, किन्तु फिर साहस करके राजा के सम्मुख जाकर श्रीफल राजा को भेंट करके राजा को आशीर्वाद दिया। यह ब्राह्मण पहले कभी राजा के निकट नहीं गया था, इसलिये राजा ने इससे पूछा कि–

राजा का प्रश्न–'कुत आगम्यते ब्रह्मन्'? हे ब्राह्मण! आपका आगमन कहां से हुआ है?

ब्राह्मण का उत्तर–'कैलासादागतोऽस्म्यहम्' अर्थात्–'मैं कैलास से आया हूं। राजा शिवभक्त तो था ही, ब्राह्मण का यह वचन सुनकर उसे शंकर के आश्रम से आया जानकर अत्यन्त आनंदित हुआ और भक्तिवश उसके कहने पर विश्वास करके पूछा–

राजा का प्रश्न–'शिवस्य चरणौ स्वस्ति' शंकर के कुशल कल्याण तो है?

ब्राह्मण का उत्तर–'किं पृच्छसि शिवो मृतः' हे राजन्! इस विषय में तू क्या पूछता है, तुझे आज तक भी खबर नहीं? अरे, शंकर तो कैलाशवासी हो गये अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो गये। ब्राह्मण के ऐसे वचन सुनकर राजा आश्चर्य में पड़ा और कहने लगा कि हे द्विजोत्तम! यह कैसे हो सकता है? क्योंकि जो मृत्यु की भी मृत्यु करनेवाला और काल का भी काल है, जिसको संपूर्ण संसार अजन्मा कहकर निरन्तर स्मरण करता है, उसकी मृत्यु किस प्रकार हो सकती है? उसके परिवार की क्या अवस्था हुई है, सो कृपा करके बतलाइये।

तब ब्राह्मण कहने लगा कि हे पृथ्वीपति! आपका चित्त अत्यन्त व्याकुल देखकर मैं संपूर्ण व्यवस्था कहता हूं, उसे श्रवण करो–

"अर्धं दानववैरिणा गिरिजयाप्यर्धं हरस्याहृतं
देवेत्थ भुवनत्रये स्मरहराभावे समुन्मीलति !
गंगा सागरमम्बरं शशिकला शेषश्चपृथ्वीतलं
सर्वज्ञत्वमधीश्वरत्वमगमत्त्वांमांच भिक्षाटनम् ।।"

अर्थात्–महादेव का आधा अंग तो विष्णु भगवान् ने हर लिया, शेष बचा हुआ आधा अंग पार्वती ने हर लिया। इस प्रकार उनका सम्पूर्ण शरीर विभक्त हो गया। अब उनके परिवार की हालत बताता हूं, सुनो उनके मस्तक पर की गंगा समुद्र में चली गयी और शशिकला आकाश में चन्द्रमा के साथ मिल गयी तथा सर्पादिक धरती के तले अर्थात् पाताल में चले गये। उनकी सर्वज्ञता और अधीश्वरता तुम में चली आयी और बाकी बचा भिक्षाटन वह मुझमें आ गया है।

इस प्रकार संकर्षण की चतुरता देखकर राजा भोज अत्यन्त प्रसन्न हुआ और ब्राह्मण से कहने लगा कि हे द्विजोत्तम! तुम्हारी क्या अभिलाषा है, मुझसे मांग लो, मैं तुझसे अत्यंत प्रसन्न हूं।

तब संकर्षण बोला कि हे पृथ्वीभूषण! मैं दरिद्रता से अत्यन्त दुःखी हूं। मुझे तथा मेरे कुटुम्ब के लोगों को अन्न तक भी नहीं मिलता, फिर घर में छोटे छोटे कई बालक हैं उनकी माता को पेट भर भोजन न मिलने के कारण उनको दूध तक भी नहीं मिल पाता, जिससे वे रात-दिन रोते रहते हैं, अतएव उनके रक्षार्थ एक गाय या भैंस दिलाने की आज्ञा होनी चाहिये।

यह सुनकर राजा ने तत्काल मन्त्री से कहा कि इस ब्राह्मण को एक उत्तम भैंस मंगाकर अभी दे दो। मन्त्री ने तत्काल ग्वालियों से एक उत्तम भैंस मंगाकर उसे प्रदान की। किन्तु अधिकारियों ने बीच में धूर्तता की और उसे ब्याई हुई भैंस नहीं दी, वन्ध्या तथा ऊपर से दिखने में हृष्टपुष्ट और वृद्धा भैंस लाकर उसे दे दी। पर उन अधिकारियों की धूर्तता को वह तत्काल समझ गया। वह भैंस के समीप जाकर उसके कान के निकट अपना मुख करके और उसका मुख अपने कान के निकट करके चला आया। राजा ने यह देखकर आश्चर्य में भरकर ब्राह्मण से पूछा–हे ब्रह्मदेव! तुमने ऐसा क्यों किया उसे मुझे समझाओ।

ब्राह्मण ने बताया कि हे भूपेन्द्र! इस भैंस के वत्स (बच्चा) या पाड़ा नहीं है, यह बिना दूधकी है। मात्र इसके स्तन(थन) ही देखनेमें आते हैं। मैंने इससे पूछा–तू गर्भवती है या नहीं? तब उसने मेरे कानमें कहा–हे ब्राह्मण!

'भर्ता मे महिषासुरः कृतयुगे देव्या भवान्या हतं
स्तस्मात्तद्दिनतो भवामि विधवा वैधव्यधर्मा ह्यहम् ।

दन्ता मे गलिताः कुचा विगलिता भग्नं विषाणद्वयं
वृद्धायां मयि गर्भसम्भवविधिं पृच्छन्न किं लज्जसे ।।१।।"

अर्थात्–मेरे पति महिषासुर को कृत युग में देवी ने मार डाला है, जिससे मैं उस दिन से वैधव्य भोग रही हूं। विधवा होकर आज तक मैं विधवा–धर्म को पालती आ रही हूं। मैंने हरगिज जारकर्म नहीं किया। अब मेरे दांत गिर गये हैं और स्तन शिथिल हो गये हैं और दोनों सींग भी टूट गये हैं, जिससे मैं वृद्ध हो गयी हूं, ऐसी अवस्था में मुझे देखकर भी 'तू सगर्भा है?' ऐसा प्रश्न करता है, क्या तुझे लज्जा नहीं आती? इस प्रकार उसने मेरे कान में कहा। ब्राह्मण का चातुर्य देखकर राजा अत्यन्त आनन्दित हुआ। फिर उन अधिकारियों को बुरी तरह डांटकर एक बहुत दूध देनेवाली हृष्ट-पुष्ट वत्सी (बच्ची या पाड़ी) समेत कम उम्र की और बहुत सौम्य भैंस मंगाकर उस ब्राह्मण को दी और उसका दरिद्र दूर करने के लिये उसको दस हजार रुपये और अनेक प्रकार के वस्त्राभूषण देकर उसे आदरपूर्वक प्रतापगढ़ की ओर विदा किया। संकर्षण ने घर जाकर अपनी परम पवित्र और साध्वी स्त्री कमलादेवी से पूर्वोक्त सब कथा कही। उसे सुनकर कमलादेवी अत्यन्त प्रसन्न हुई। फिर संकर्षण अपने परिवार समेत आनन्द के साथ रहने लगा।

कला ४३
(चार कुमारी)

धाराधिपति राजा भोज की सभा में बड़े-बड़े धुरंधर विद्वान्, सम्पूर्ण शास्त्रों में दक्ष, सभाजीत, अत्यन्त चतुर चौदह सौ पंडित थे। इन सब पंडितो को मासिक वेतन दरबार से मिलता था और बाहर से आये विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ करके सत्यतापूर्वक विजय करना ही इनका मुख्य कार्य था। इन सब में श्रेष्ठ और अग्रणी महाकवि कालिदास माने जाते थे।

उन्हीं दिनों दंतावती नगरी के सद्गृहस्थों की समान वयवाली चार कन्याएं बाल्यावस्था से वाराणसी नगरी में रहकर अनेक शास्त्रों का अध्ययन करके सब विद्याओं में निपुण हुईं। ये चारो कन्याएं भिन्न-भिन्न जाति की थीं, परंतु रूप, विद्या और अवस्था में चारों समान दीख पड़ती थीं। जब वे तरुण हुईं, तो उन्होंने विचार किया कि हम मूर्ख पुरुषों के साथ तो विवाह करेंगी नहीं, क्योंकि भिन्न-भिन्न स्वभाववालों के साथ विवाह करने से परस्पर प्रीति टूट जायेगी और गृहस्थ-जीवन व्यतीत करने में विशेष दुःख होगा। उन्होंने मन में ऐसा सोचकर अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के इरादे से पंडितों को वाद-विवाद में जीतकर अपनी अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए अनेक

देश-देशान्तरों में भ्रमण करके अनेक प्रसिद्ध राजाओं की सभाओं में जाकर बड़े-बड़े शास्त्रार्थ कर महारथियों के मद को चूर्ण कर दिया और राजाओं से नाना प्रकार के वस्त्राभूषण और अधिक धन प्राप्त करती हुई भ्रमण करती धारानगरी में पहुंचीं। वहां एक उत्तम स्थान किराये पर लेकर उसमें ठहरीं। भोजन करके विश्राम करते समय चारों मन में विचार करने लगीं कि राजा भोज की सभा में चौदहसौ पंडित हैं और वे सम्पूर्ण देश-देशान्तर में प्रतिष्ठा प्राप्त किये हुए हैं। उन्हें शास्त्रार्थ में जीतना अत्यन्त कठिन काम है। इस प्रकार बहुत समय तक सोचने के बाद उन्होंने एक युक्ति निकाली और सभा में आकर उपस्थित हुईं। इन चारों के रूप, लावण्य गुण और चातुर्य को देखकर राजा समेत सम्पूर्ण सभा मुग्ध हो गयी; क्योंकि पहले कभी ऐसी कन्याएं स्वप्न में भी नहीं देखी गयी थीं। राजा भोज ने चारों कन्याओं को सत्कारपूर्वक उचित आसन पर बिठलाया। फिर उनमें जो एक अग्रणी थी, वह उठकर कहने लगी कि–हे भूपेन्द्र! हम चारों कुमारिकाएं समानरूपवाली होने पर भी एक जाति की नहीं है अर्थात् हम चारों की जाति अलग-अलग है। हम चारों समान वय की हैं और हम चारों में इस प्रकार की प्रीति है कि सगी बहनों में भी नहीं होगी। हमने देश-देशान्तरों में पर्यटन करके अनेक विद्वानों को परास्त करके राजाओं से बहुमूल्य पदक प्राप्त किये हैं। उनके द्वारा ताम्रपत्र के लेख हमारे पास है तथा अतुल द्रव्य हमारे वाहनों पर लदा हुआ है। जगत् में आपकी निर्मल कीर्ति सुनकर हम आपकी सभा में आयी हैं। आपकी सभा के भूषणरूप चौदहसौ पंडित हैं, जो वर्षों से बैठे-बैठे वेतन पा रहे हैं। उनके साथ हम साधारण रीति से वाद-विवाद करें, बस! यही हमारी प्रार्थना है।

वादविवाद करने से पहले हमारा यह प्रश्न हैं कि हम चारों कौन-कौन जाति की हैं? इसका सही उत्तर जो पंडित देगा, हम उसी के साथ वादविवाद करेंगी और अन्य पंडितों से हमारा कुछ प्रयोजन नहीं।

इस प्रकार उन कन्याओं का सम्भाषण सुनकर राजा ने चौदहसौ पंडितो की सभा की ओर उन कन्याओं की कही हुई सारी बात कह सुनायी।

समस्त पंडित कन्याओं का अपूर्व रूप, समानवय, चतुरता, विलक्षण विद्वत्ता, किशोर अवस्था और अलौकिक धैर्य देखकर अत्यन्त आश्चर्य में पड़ गये। राजा भोज ने सम्पूर्ण पंडितों को आज्ञा दी कि तीन दिन के भीतर चौदह सौ पंडितों में से जो भी इन कुमारियों की जाति का पता नहीं कर सकेगा, उसका सब धन माल छीनकर उसे देश से निकाल दिया जायेगा। ऐसी आज्ञा करके सभा विसर्जित कर दी और उन चारों कुमारियों को एक उत्तम स्थान में ठहराया और उनके भोजनादि का उत्तम प्रबन्ध कर दिया। सभी पंडित मन में

अनेक प्रकार के विचार करते हुए डरते-डरते अपने अपने घरों को गये। रात्रि होने पर सब पंडित विचारसागर में गोते खाने लगे, परन्तु कन्याओं की जाति का किसी को भी पता नहीं लग सका। वे रात्रि भर इसी शोच में डूबे हुए चिन्ता करते रहे। कोई भी उपाय उनकी जाति के पता लगाने का समझ में नहीं आया। विचार करते-करते यों ही दो दिन बीत गये और तीसरा दिन आ गया। पंडित लोग चिन्ता करने लगे कि राजा अवश्य हमारा सर्वस्व छीन कर हमें देश से निकाल देगा। वे अत्यन्त भयभीत थे।

और वे चारों कन्याएं आनन्द पूर्वक अपने दिन व्यतीत कर रही थीं। दो दिन बीत गये, तब उन चारों में एक कन्या आपस में बोली—हे बहिनो! अब नियत समय में केवल आठ प्रहर शेष हैं। इतने समय में कोई भी अपनी जाति का पता नहीं लगा सका, तो कल प्रातःकाल भोजराज समस्त पंडितों को गर्दभों पर आरोहण कराकर निःसंदेह देश से निकाल देगा।

दो दिन बीत गये और तीसरे दिन का प्रातःकाल हो गया। उस समय कवि कालिदास के मन में गंभीर चिंता हुई कि मैंने हजारों पंडितों को जीतकर राजा भोज से अनेक बार पारितोषिक पाया है और ये किशोर अवस्था की चार कुमारियां अर्थात् अबलाओं ने आकर चौदह सौ पंडितों को लज्जित कर दिया है। यह बड़ी लज्जा की बात है यदि मैं इन चौदह सौ पंडितों का शिरोमणि होकर इन्हें उत्तर न दूं। इसलिए इनकी जाति की परीक्षा का उपाय मैं अभी करूंगा। ऐसा निश्चय करके स्नान—सन्ध्यादि नित्यकर्मों से निवृत्त होकर वह अपनी इष्टदेवी काली के मंदिर की ओर चला और मंदिर में बैठकर एकाग्र चित्त से काली का ध्यान किया। बहुत देर तक ध्यान करने के बाद काली मां ने दर्शन दिये और पूछा—"वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि"

अर्थात् 'वर मांग, वर मांग' ऐसा उच्चारण किया।

तब कालिदास ने उन चारों कन्याओं की जाति जानने की और बाद में जीतने की बात कह सुनाई। तब देवी ने बताया कि तेरी कामना थोड़े ही परिश्रम से सफल हो जायेगी। इस प्रकार का वरदान देकर देवी अन्तर्धान हो गयी और कालिदास अपने घर चला गया। फिर भोजन के बाद सन्ध्या के समय चोर के समान छिपकर कालिदास इन कुमारियों के मन्दिर में जाकर एकांत स्थान में बैठ गया और मन में विचार किया कि इनके वार्त्तालाप और आचरण से इनकी जाति की परीक्षा हो जायेगी। परन्तु संपूर्ण रात्रि बीत गयी और अरुणोदय का समय हो चला, किंतु किसी का सम्भाषण सुनने में नहीं आया। इससे कालिदास को बड़ी चिंता उत्पन्न हुई। तभी एक कन्या की आंख खुली और खिड़की की ओर दृष्टि करके शिखरिणी छन्द का अधोलिखित

चरण कहा–

श्लोक च० १–"अभूत्प्राची पिङ्गा रसपतिरिव प्राश्य कनकम् ।'

अर्थात्–सूर्योदय के होने से पूर्व दिशा ऐसी पीली पड़ गयी है जैसे सुवर्ण के योग से पारा पीला हो जाता है।

उस कन्या का संभाषण सुनकर कालिदास को निश्चय हो गया कि यह सुनार की पुत्री है।

श्लोक का पहला चरण सुनकर दूसरी कन्या निद्रा से सचेत हुई और उसने भी खिड़की में से बाहर की ओर देखकर दूसरा निम्नलिखित चरण कहा–

श्लोक च० २–'गतच्छायश्चन्द्रो बुधजन इव ग्राम्यसदसि ।'

अर्थात्–चन्द्रमा की कान्ति ऐसी मंद हो गयी हैं जैसे पंडित मूर्खों की सभा में जाकर ग्लानि से भर उठता है।

दूसरा पद सुनकर कालिदास समझ गया कि निश्चय ही यह ब्राह्मण की पुत्री है।

इस शब्द को सुनकर तीसरी कन्या उठ गयी और उसने भी तीसरा चरण कहा–

श्लोक चं० ३–"क्षणात्क्षीणास्तारा नृपतय इवानुद्यमपरा: ।"

अर्थात्–क्षण भर में देखते-देखते हुए आकाश के तारों की ज्योति ऐसी मंद पड़ गयी है जैसे निरुद्यमी राजा क्षीणता को प्राप्त हो जाता है।

इस वचन को सुनते ही कवि कालिदास को निश्चय हो गया कि अवश्य यह क्षत्रिय की पुत्री है अर्थात् राजकुमारी है।

उसके पश्चात् चौथी कन्या जागृत हो गयी और उसने भी खिड़की की ओर दृष्टि करके चौथा चरण इस प्रकार कहा–

श्लोक च० ४–'न राजन्ते दीपा द्रविणरहितानामिव गृहा: ।'

अर्थात्–दीपक का तेज ऐसे निस्तेज हो गया जैसे द्रव्यरहित पुरुष का घर शोभा नहीं देता।

चौथा चरण सुनते ही कालिदास को विश्वास हो गया कि वह अवश्य वणिकपुत्री है।

इस श्लोक को सुनकर कालिदास मन्दिर से गुप्त रूप से इस तरह निकल आया कि उसे कोई देख न सके ।

वे कन्याएं अपने नित्यकर्मों से निवृत्त होकर भोजनादि के पश्चात् दरबार में जाकर उपस्थित हुईं। राजा ने सब पंडितो को बुलाया और देखा तो सबके मुखकमल मुरझाये दीखे। कन्याओं ने पंडितों को अत्यन्त उदास देखकर निश्चय कर लिया कि अवश्य ये निरुत्तर हैं। इतने में कवि कालिदास भी सभा में आ

पहुंचे। इसके उपरांत राजा ने पंडितों से पूछा कि—इन कन्याओं की क्या-क्या जाति है? इस प्रश्न को सुनते ही कालिदस ने तत्काल अधोलिखित श्लोक कहकर सबकी जाति कह सुनायी।

'अभूत्प्राचीपिंगा रसपतिरिव प्राश्य कनकं
गतच्छायश्चन्द्रो बुधजन इव ग्राम्यसदसि ।
क्षणात्क्षीणास्तारा नृपतय इवानुद्यमपरा
न राजन्ते दीपा द्रविणरहितानामिव गहाः ।।१।।'

अर्थात्—सूर्योदय होने से पूर्वदिशा ऐसी पीली पड़ गयी, जिस प्रकार सुवर्णके समागममें पारा पीला पड़ जाता है और चन्द्रमाकी कांति ऐसे निस्तेज हो गयी कि जिस प्रकार मूर्खोंकी सभामें पंडित ग्लानिको प्राप्त होता है। फिर देखते देखते आकाश से सम्पूर्ण तारे ऐसे अस्त हो गये, जिस प्रकार निरुद्यमी राजा क्षीणताको प्राप्त हो जाता है तथा दीपकका तेज अर्थात् प्रकाश ऐसे मंद हो गया जिस प्रकार द्रव्यरहित पुरुषका घर शोभाको प्राप्त नहीं होता।

इस प्रकार कालिदास पंडित ने हजारों पंडितों के और अनेक सभासदगणों के मध्य में उन चार कन्याओं की जाति पृथक-पृथक कह सुनायी। सभा के सम्पूर्ण सभासदगण और विद्वान् लोग कालिदास को बारंबार धन्यवाद देने लगे। राजा भोज और वे चारों कन्याएं आश्चर्य में डूब गयीं। इस प्रकार कालिदास का समयोचित, यथेष्ट उत्तर सुनकर चारों कन्याओं ने मन ही मन तो कालिदास को वरण कर लिया, पर उसकी चतुरता और विद्वता देखने के लिये प्रत्येक कन्या कालिदास से प्रश्न करने लगीं—

प्रथम सुनार की पुत्री चंद्रचकोरी कहने लगी—हे कविवर कालिदास! इस संसार में करने योग्य कार्य कितने हैं? वसंतऋतु कैसी सुखदायक है? राजाओं को कौन से दोष सदैव त्यागने योग्य होते हैं? इस प्रकार तीनों प्रश्नों का कृपा करके पण्डितजी! उत्तर दीजिये। यह सुनकर कवि कालिदास बोले—हे चन्द्रचकोरी! श्रवण कर—

"तपस्यन्तः सन्तः किमधिनिवसामः सुरनदीं
गुणोदारान्दारानुत परिचरामः सविनयम् ।
पिवामः शास्त्रौघानुत विविधकाव्यामृतरसान्
न विद्मः किं कुर्म कतिपयनिमेषायपि जने ।।१।।"

अर्थात्—गंगा के तट पर जाकर उत्कृष्ट तप करना चाहिये, या उदार गुणवाली स्त्रियों का प्रेमपूर्वक सेवन करना चाहिए और कल्याणकारी अनेक शास्त्रों का सार पान करना चाहिए या अनेक प्रकार के काव्यसृतपूरित पंथों के रसों का पान करना चाहिये, पर क्या क्या करें? क्योंकि समय तो थोड़ा है

और यह संसार क्षणभंगुर है इस कारण मेरी बुद्धि के अनुसार ईश्वर की आराधना करने ने समान अन्य कार्य नहीं।

पहले प्रश्नका उत्तर कहकर दूसरे का उत्तर निम्नलिखित श्लोकमें कहा—

'परिमलभृतो वाताः शाखा नवांकुरकोटयो मधुरविरुतोत्कष्ठावाच प्रियाःपिकपक्षिणाम् । विरलसुरतस्वेदोद्गारा वधूवदनेन्दवः प्रसरति मधौ रात्र्यां जातो न कस्य गुणोदयः ।।'

अर्थात्—वसन्तऋतु के फैलने से पवन सुगन्धित बहने लगा, वृक्षों की शाखाओं में करोड़ों नवीन अंकुर प्रगट होने लगे, कोयलों की मधुर वाणी मन में आनन्द भरने लगती है, जिससे वह अत्यन्त प्रिय लगती है और रात्रि के समय स्त्रियों के चन्द्रमा के समान मुखकमल पर कामक्रीड़ा के परिश्रम से बहुत सूक्ष्म मोती के समान पसीने के बिंदु दीखते हैं। जिससे वसंतऋतु में सम्पूर्ण गुणों का उदय होता है।

इस प्रकार दूसरे प्रश्न का उतर देकर, तीसरे प्रश्न का उत्तर उसने नीचे लिखे अनुसार कहा—

स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्पारुष्यं च पञ्चमम् ।। महांश्च दण्डः पारुष्यमर्थदूषणमेव च ।।३।। सप्त दोषाः सदा राज्ञा हातव्या व्यसनाकराः ।।प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतमूला अपीश्वराः ।।४।।

अर्थात्—परस्त्री, जुआं, शिकार, मद्यपान, कठोर वचन, भयंकर दण्ड और द्रव्य का नाश करनेवाले कार्य । ऐसे सातों दुःखदायक दोष राजाओं को सदैव त्यागने चाहिए। क्योंकि अत्यन्त ऐश्वर्यवान् दृढ़ विचारों वाले और समर्थ राजा में भी यदि इनमें से एक भी दोष होगा, तो वह राजा नष्ट हो जायेगा और यदि सातों दोष हों, तो कहना ही क्या है?

इस प्रकार तीनों प्रश्नों के उत्तर सुनकर चन्द्रचकोरी प्रसन्न होकर अपने स्थान पर जाकर बैठ गयी।

तत्पश्चात् ब्राह्मण की पुत्री चन्द्रप्रभा खड़ी होकर कालिदास से बोली—हे विद्वद्वर्य महाकवि! इस संसार में मुक्ति का साधन क्या है? भाग्यवान् पुरुषों को हेमंत ऋतु में कौन सी इच्छा उत्पन्न होती है? और पृथ्वी में धर्म को छोड़कर अधर्म कार्य करनेवाले कितने पुरुष हैं।

यह सुनकर कवि कालिदास ने कहा कि हे चन्द्रप्रभा! तू श्रवण कर—

"जीर्णा एवं मनोरथाः स्वहृदये यातं च तद्योवनं हन्ताङ्गेषु गुणाश्चवन्ध्यफलतां याता गुणज्ञैर्विना । किं युक्तं महसाऽभ्युपैतिवलवान् कालः कृतान्तोऽक्षमी ह्यज्ञातं स्मरशासनांघ्रियुगलं मुक्त्वाऽस्ति नान्या गतिः ।।१।।"

अर्थात्–सम्पूर्ण मनोरथ हृदय में ही जीर्ण हो गये, यौवन अवस्था बीत गयी, सम्पूर्ण गुण गुणज्ञ के बिना निष्फल हो गये, यमरूपी बलवान् काल सहसा शीघ्रता से दौड़ा चला आ रहा है, इसलिए इस समय महादेव के चरणकमलों के सिवाय मुक्ति का अन्य साधन नहीं है।

इस प्रकार प्रथम प्रश्न का उत्तर कहकर दूसरे प्रश्न का उत्तर कहा–

'हेमन्ते दधिदुग्धसर्पिरशना माञ्जिष्ठवाः सोभृतः
काश्मीरद्रवसान्द्रदिग्धवपुषः खिन्नां विचित्रै रतैः ।
पीनोरुस्तन कामिनीजनकृताश्लेषा गृहाभ्यन्तरे
ताम्बूलीदलपूगपूरितमुखा धन्या सुखं शेरते ।।२।।'

अर्थात्–हेमन्त ऋतु में जो दूध, दही, घी का सेवन करते हैं, जो अनेक प्रकार के मँजीठ के रंग के वस्त्रों को धारण करते हैं, जो शरीर पर केशर का गाढ़ा लेप करते हैं, जो कामक्रीड़ा से खिन्न रहते हैं, जो पुष्ट जंघा और पुष्ट स्तनवाली स्त्रियों का दृढ़ आलिंगन करते हैं और जिनके मुख सदैव नागरबेल के पान तथा सुपारी आदि से परिपूर्ण रहते हैं और जो वातरहित भीतर के मकान में सोते हैं, वे पुरुष हेमन्त ऋतु में धन्य हैं।

दूसरे प्रश्न का उत्तर देखकर कालिदास ने तीसरे प्रश्न का उत्तर नीचे लिखे अनुसार दिया–

'दश धर्मं न जानन्ति विप्रबाले निबोध तान् ।
तस्मादेतेषु सर्वेषु न प्रसेज्जत पण्डितः ।।३।।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ।
त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश ।।४।।'

अर्थात्–हे विप्रनतये! इस संसार में ये दस मनुष्य धर्म को छोड़कर अधर्म के काम करते हैं–मदिरा पान करने से मत्त हुआ, विषयों में प्रमत्त हुआ उन्मत्त (विक्षिप्त) परिश्रम करने से थका हुआ, क्रोधातुर, बहुत शीघ्रता करनेवाला, अत्यन्त लोभी, भयभीत और कामी पुरुष इन सबकी पंडित जनों को कदापि संगति नहीं करनी चाहिये।

चन्द्रप्रभा अपने प्रश्नों का यथोचित उत्तर सुनकर अत्यन्त हर्षित होकर अपने स्थान पर जा बैठी। तत्पश्चात् राजकुमारी चंपकमाला खड़ी होकर बोली कि हे राजा के भूषण कविराजजी! जगत् में नित्य पदार्थ कितने हैं? और अनित्य पदार्थ कितने हैं? शिशिर ऋतु में क्या-क्या कर्त्तव्य है? और स्वर्ग को ले जानेवाले कौन से कर्म हैं।

कालिदास पंडित ने उत्तर दिया कि हे चम्पकमालती! सुनो–

प्राप्ता: श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ।
संमानिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं
कल्पं स्थितंतनुभृतांतनुभिस्ततः किम् ॥१॥

अर्थात्–सर्वकामनाओं को पूर्ण करनेवाली लक्ष्मी प्राप्त हुई तो क्या? शत्रुओं के मस्तक पर पांव धरे तो भी क्या? तथा सेवकों को वैभव से सम्मानादि किया तो भी क्या? और जो इस शरीर से एक कल्पपर्यन्त जिये तो भी क्या?

भावार्थ–लक्ष्मी चञ्चल है, इसलिए कभी न कभी उसका अवश्य अन्त होगा। शत्रुओं को जीतकर शिर पर पैर रखने से क्या, क्योंकि अन्त में तो अवश्य बल घट जायेगा। सेवक अथवा धन के लोभियों ने सम्मान किया तो भी क्या, क्योंकि जब तक धन है तभी तक वे सम्मान करेंगे और जो शरीर एक कल्पपर्यन्त रहा तो भी क्या, क्योंकि इन सबका अन्त है इस कारण यह सब अनित्य है, केवल एक ईश्वर ही नित्य है। फिर हे चम्पकमालती!

'भक्तिभवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं,
स्नेहो न बंधुषु मन्मथजा विकाराः ।
संसर्गदोषरहिता विजना वनांता,
वैराग्यमस्ति किमतः परमार्थनीयम् ॥१॥"

अर्थात्–महादेव में भक्ति, हृदय में जन्म-मरण का भय, बंधुजनों में निःस्नेहता कामविकार का मन में नहीं होना, संसर्गदोष से रहित होकर अकेले निर्जन वन में भ्रमण करना, यही वैराग्य है और इससे विशेष क्या वैराग्य होगा? इस प्रकार पहले प्रश्न का उत्तर कहकर कालिदास दूसरे प्रश्न का उत्तर कहने लगा–

'चुम्बन्तो गण्डभित्तीरलकवति मखे सीत्कृतान्यादधाना
वक्षस्सूत्कञ्चुकेषु स्तनभरपुलकोद्भेदमापादयन्तः ।
ऊरूनाकम्पयन्तः पृथुजघनतटात् संसयन्तोंऽशुकानि
व्यक्ताःकान्ताजनानां विटचरितकृताः शैशिरावान्ति वाताः ॥२॥

अर्थात्–बांके केशोंवाली स्त्रियों के कपोलों का चुम्बन करता है और कंचुकी रहित वक्षःस्थल में रोमांच को उत्पन्न करता तथा जंघाओं का कम्पावता और जघन के ऊपर के वस्त्र को उघाड़ता इस प्रकार व्यभिचारी पुरुषों के समान आचरण करता हुआ शिशिरऋतु का वायु हवन करता है। फिर हे हरिणाक्षी!

'प्रोद्यत्प्रौढप्रियंगुद्युतिभृति विदलत्कुन्दमाद्यद्द्विरेफे
कालेप्रालेयवातप्रचलविकसितोद्दाममंदारनाम्नि ।
येषां नो कण्ठलग्ना क्षणमपि तुहिनक्षोदरक्षा मृगाक्षी
तेषामायामयामा यमसदनसमा यामिनी याति यूनाम् ।।३।।

अर्थात्–जिसमें प्रियंगु फूलकर अपूर्व शोभा को धारण करते हैं, जिसमें फूले हुए कुंद के वृक्षों को देखकर भ्रमरगण उन्मत्त होकर भ्रमण करते हैं और जिसमें शीतलपवन के बहने से मन्दार वृक्षों की पंक्ति विकसित होती है, ऐसे समय में शीत से बचानेवाली स्त्री क्षणभर भी जिनके संगठन में आलिंगन नहीं करती, उन तरुण पुरुषों को यह रात्रि महान् और यमसदन के समान दीखती है अर्थात् अत्यन्त दुःखदायक हो जाती है।

इस प्रकार कालिदास ने दूसरे प्रश्न का उत्तर देने के पश्चात् तीसरे प्रश्न का उत्तर नीचे लिखे अनुसार कहा–

'सत्यं रूपं श्रुतंविद्या कौल्यं शीलं बलं धनम्
शौर्यं च चित्रभाष्यं च दशैताः स्वर्गयोनयः ।।४।।'

अर्थात्–सत्य, रूप, शास्त्र का अभ्यास, विद्या, कुलीनता, शील, बल धन, वीरता और युक्तिपूर्वक बोलना, ये दसों स्वर्ग की योनि हैं।

राजकुमारी चम्पकमालती इस प्रकार अपने तीनों प्रश्नों के यथोचित्त उत्तर सुनकर अत्यन्त आनंदपूर्वक अपने स्थान में जा बैठी। पश्चात् चौथी वणिक्पुत्री चित्रलेखा खड़ी होकर निम्नलिखित प्रश्न करने लगी।

हे पंडितशिरोमणि! इस संसार में कौन पुरुष धन्य हैं और स्त्रियों के स्वाभाविक श्रृंगार क्या है तथा पौरुष और प्रारब्ध इन दोनों में विशेष कौन है? इन तीनों प्रश्नों का उत्तर कृपा करके शीघ्र दीजिये।

यह सुनकर कवि कालिदास कहने लगे कि हे चित्रलेखा! श्रवण कर–

'सखे धन्याः केचित्त्रुटितभवबन्धव्यतिकरा
वनान्ते चित्तान्तर्विषमविषयाशी विषगताः ।
शरच्चन्द्रज्योत्स्नाधवलगगनाभोगसुभगां
नयन्ते ये रात्रिं सुकृतचयचित्तैकशरणाः ।।१।।

अर्थात्–हे प्रिये! जिनका भवबन्धन टूट गया है तथा अन्तरंग में रहनेवाला विषयरूपी अत्यन्त विषैला सर्प जिनके हृदय से निकल गया है तथा जो शरच्चन्द्रमा की स्वच्छ चांदनी में रात्रि वनान्त में व्यतीत करते हैं और सुकृत में लगा हुआ चित्त ही जिनकी शरण है, ऐसे महात्मा धन्य हैं, अर्थात्–ऐसे पुरुष धन्य हैं। दूसरे प्रश्न का उत्तर–

"वक्त्रं चन्द्रविडम्बि पंकजपरीहासुक्षमे लोचने
वर्ण: स्वर्णमपाकरिष्णुरलिनीजिष्णु: कचानां चय: ।
वक्षोजाविभकुम्भविभ्रमहरौ गुर्वीनितम्बस्थली
वाचो हरि च मार्दवं युवतिपु स्वाभाविक मण्डनम् ।।२।।"

अर्थात्–चन्द्रमा के समान मुख, कमल से श्रेष्ठ नेत्र, सुवर्ण से सुन्दर शरीर का वर्ण, भ्रमर के समान श्यामकेश, हाथी के गण्डस्थल से भी उत्तम और पुष्ट स्तन तथा भारी नितंब एवं मनोहर वचन और सौकुमार्य ये सभी गुण स्त्रियों में स्वाभाविक होते हैं। तीसरे प्रश्न का उत्तर–

'नेता यस्य बृहस्पति: प्रहरणं वज्रं सुरा सैनिका:
स्वर्गो दुर्गमनुग्रह: किल हरेरैरावतो वारण ।
इत्यैश्वर्य्यबलान्वितोऽपि वलभिद्भग्न: परै: सङ्गरे
यद्युवतं ननु देवमेव शरणं धिग्धिग् वृथा पौरुपम् ।।३३।।"

अर्थात्–जिसका मंत्री बृहस्पति है, जिसका शस्त्र वज्र है, जिसकी सेना देवताओं की है, स्वर्ग जिसका किला है, विष्णु भगवान् की जिसके ऊपर कृपा और जिसकी सवारी के लिये ऐरावत हाथी, ऐसे ऐश्वर्यवान् और बलशाली इन्द्र को भी शत्रुओं ने जीत लिया, इससे सिद्ध होता है कि केवल एक प्रारब्ध ही रक्षा करनेवाला है, इसलिए बिना प्रारब्ध के पुरुषार्थ को धिक्कार है। यदि प्रारब्ध बलवान् न हो तो मनुष्यों का उद्योग निष्फल होता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। इस पर दृष्टांत कहते हैं–

"खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणै: सन्तापितो मस्तके
वाञ्छन्देशभनातपं विधिवशात्तालस्य मलं गत: ।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नंसशब्दं शिर:
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहिस्तत्रैव यान्त्यापद: ।।४।।"

अर्थात्–एक खल्वाट (गंजा) मनुष्यका मस्तक जब सूर्यकी किरणोंसे सन्तापित होने लगा तब वह छायाकी इच्छा करते हुए ताड़के वृक्षके नीचे जाकर खड़ा हो गया।दैववश ऊपर से ताड़ का एक बहुत बड़ा फल जोर से उसके सिर पर आकर गिरा।जिससे सिर फट गया और बड़ी जोर का शब्द हुआ। इससे सिद्ध होता है कि भाग्यहीन पुरुष जहां-जहां जाता है, वहीं-वहीं उसके साथ विपत्ति भी जाती है।इस प्रकार तीनों प्रश्नोंका यथोचित्त उत्तर मिलनेपर चित्रलेखा अत्यन्त आनंदित होकर अपने स्थानमें जाकर बैठ गयी।

फिर चारों कन्याएं विनयपूर्वक खड़ी हुई। उनमें से प्रथम चन्द्रप्रभा कहने लगी।

हे भारत भूमि के भूषण परमारवंशावतंस प्रजावत्सल राजा भोज! हम

चारों कन्याओं ने अनेक राजा और हजारों पण्डितों की सभा में जा-जाकर शास्त्रविषयक वादविवाद किया तथा अनेक राजवंशी भी देखे, किंतु आपके समान प्रतापी राजनीतिज्ञ और ऐश्वर्यसम्पन्न कोई भी नृपति नहीं देखा तथा आपके आश्रय में रहनेवाले चौदहसौ पंडितों के मध्य में सुशोभित और आपकी सभा का शृंगाररूप कालिदास पंडित की विद्वत्ता और प्रभाव देखकर हमें अत्यन्त आनन्द हुआ। इन्होंने हमारे प्रश्नों का यथोचित्त उत्तर देकर हमें प्रसन्न करके हमें विवाद में जीत लिया है, इससे हम चारों कन्याएं कालिदास के चरणों की दासी हो चुकी हैं। इस प्रकार कहकर उन्होंने तत्काल अपने रत्नजटित सुवर्ण के पिटारों में से उत्तम रत्नों की और फूलों की माला निकालकर कालिदास के कंठ में पहना दी और विनयपूर्वक चरणों में नमस्कार किया।

फिर राजा भोज से बोलीं–हे धाराधिपति! तुम प्रजा के पितारूप हो, इसलिए शुभ लग्न विचारकर हमारा सम्बन्ध कालिदास के साथ करा दो।

उन चारों कन्याओं की विनती राजा भोज ने अत्यन्त हर्ष के साथ स्वीकार की। फिर उनका ग्राम-धाम पूछकर उनके माता-पिता तथा सम्बन्धी जनों को बुलाकर एक उत्तम मण्डप रचाया और शास्त्रोक्त विधि से उनका विवाह कालिदास के साथ करा दिया और भोजनादि में लाखों रुपये खर्च किये।

विवाह होने के पश्चात् अनेक देश–देशान्तरों से वे चारों कन्याएं अनेक राज–सभाओं को जीतकर, बहुत सा धन लायी थीं, वह सब कालिदास को अर्पण कर दिया और अपने चारों कन्याएँ कालिदास की अर्धांगिनी होकर रहने लगीं। सन्ध्या होने पर चारों कन्याएं एकत्र होकर विचार करने लगीं कि हमारा पति सर्वशास्त्रों में तथा कवित्व में महाप्रवीण और विचक्षण है, किन्तु मालूम नहीं कि कामशास्त्र में चतुर है या नहीं? और चतुर है तो विषयरूपी मद को वश में रखने के शक्ति रखता है या नहीं? इस विषय में इसकी परीक्षा लेनी चाहिये। ऐसा निश्चय किया कि जिसके पास वह पहले आये किसी प्रकार का निमित्त बनाकर रंग–विलास से अनादर कर दे, यदि वह चतुर और विलासी होगा तो वह अपने मन को किसी प्रकार से सावधान करके संसार का सुख भोग छोड़ेगा नहीं।

इस प्रकार निश्चय करके चारों बालाएं अपने–अपने शयनमंदिर में गयीं। पश्चात् निद्रा का समय होने पर कालिदास अपने मंदिर से चलकर प्रथम ब्राह्मण पुत्री के भवन में गया, चन्द्रप्रभा ने कालिदास को आता हुआ देखकर सम्मानपूर्वक बैठाया। कालिदास बड़ी देर तक तो हास्य–विनोद करता रहा। फिर संसार–सुख भोगने की इच्छा प्रकट की। तब चन्द्रप्रभा मुख मलीन करके

बोली कि हे प्राणनाथ! जब ग्रहयोग अनुकूल होगा तब तुम्हारे साथ रमण करूंगी।चन्द्रप्रभा की ऐसी बात, सुनकर कालिदास बोला कि हे चन्द्रमुखी!

'वक्त्रेन्दुः कवरीभरस्तव तमः सीमन्तसूर्यो गुरु
र्वक्षोजावधरः स चावनिजनिः केतुर्भुवौ सुंदरि ।
वाक्यं काव्यमयं शनैश्चरगतिर्मध्यस्तु सौम्योऽपरः
सा त्वं चेत्कुरुषे कृपां मयि तदा सर्वेऽनुकूला ग्रहाः ।।'

अर्थात्–तेरा मुख ही चन्द्र है और श्याम केशों का पाश ही राहु ग्रह है तथा ललाट पर गूंथे हुए बालों के बीच में शोभायमान सिंदूर का बिंदु ही सूर्य ग्रह हैं, तेरे लाल ओष्ठ मंगल ग्रह है, तेरे भारी स्तन गुरु (बृहस्पति) नामक ग्रह है तथा काव्य अर्थात् शुक्र वह मधुर वाक्य अर्थात् वाणी में स्थित है और तेरी मंदगति शनैश्चर ग्रह सहस्वभाव से ही तेरी सेवा में उपस्थित रहती है तथा तेरा मध्यभाग अर्थात् कटितट अत्यंत सुंदर है, वह सौम्य अर्थात् चंद्रमा का पुत्र बुध की उपमा के योग्य है। इस तरह सम्पूर्ण ग्रह तेरे शरीर में निवास करते हैं। अतएव यदि तू मेरे अनुकूल हो तो मेरे सब ग्रह अनुकूल होंगे, किंतु इन आकाश में लटकते ग्रहों से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है, केवल एक तेरी ही कृपा होनी चाहिये। इस प्रकार कालिदास के वचन ये श्रवण करते ही चंद्रप्रभा ने अत्यंत प्रसन्न होकर आलिंगन किया। पश्चात् कालिदास ने अनेक प्रकार की यात्रा करनेकी इच्छा करने वाली वणिक्तनया के शरीर को स्पर्श करने की इच्छा की, तब वैश्यपुत्री ने कालिदास से कहा–कि तुम पहले एक बड़ी तीर्थयात्रा करके पवित्र हो जाओ, पश्चात् मेरे शरीर का आलिंगन करना। इस समय आलिंगन करने की मेरी रुचि नहीं है, तब कालिदास ने उसके मनोरंजन के लिये अधोलिखित श्लोक कहा- हे सुकोमला!

"मध्यं विष्णुपदं कुचौ शिवपदं वक्त्रं विधातुः पदं
धम्मिल्लः सुमनःपदं प्रविलसत्कांची नितम्बस्थली ।
वाणी चेन्मधुरा धरोऽरुणधरः श्रीरंगभूमिर्वपुः
किं ते स्त्रि प्रवदामि पुण्यचरितं त्वं निर्जरैः सेव्यसे ।।१।।"

अर्थात्–तेरी कमर अत्यन्त पतली है इसकी उपमा देने के लिये यदि सूक्ष्म से भी सूक्ष्म वस्त्र शोधन की जाये तो केवल एक विष्णुपद ही दीखता है, इसलिए विष्णुपद नामक तीर्थ तो तेरे कटिभाग में निवास करता है और जो शिव संबंधी यात्रा है वह शिवस्वरूप तेरे दोनों स्तन हैं। उनकी उपमा स्तन को दी जाती हैं। इस तरह शिवजी की सम्पूर्ण तीर्थयात्राओं का समावेश तेरे हृदय पर है तथा ब्रह्मसम्बंधी संपूर्ण तीर्थयात्रा उसके स्थानरूप कमल के विषे है ऐसा कहना कुछ अनुचित नहीं इसलिए तेरे मुखकमल में ब्रह्मतीर्थ का

समावेश स्वभाव से होता है। अतएव तैंतीस कोटि देवताओं का निवास तेरे केशों के पाश में है, क्योंकि केशों में गुंथे हुए फूलों के समूह से मानो सत्पुरुष भक्तिभाव से पूजन किये हुए पुरुषों से सुवासित किये देवताओं के समूह के समान केशपाश विदित होते हैं। इसीलिए सुमनसः (पुष्प तथा सत्पुरुषों) का स्थान कहना योग्य है और नितम्बों के ऊपर शोभती कटिमेखला यह दी हुई शिवकांची, विष्णुकांची, यह दो पुरी मोक्ष देने वाली तीर्थयात्रा हैं, वे ही पुराण में भी कही हैं।

'अयोध्यामथुरामायाकाशीकांची अवन्तिका ।
पुरीद्वारावतीचैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ।।१।।'

अर्थात्–अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवंतिका अर्थात्–उज्जैन और द्वारका ये सातों पुरी मोक्ष को देने वाली हैं। इस कारण तेरे नितम्बों के ऊपर कांची तो भ्रमण किया करती है, फिर तेरी मधुर वाणी वही मथुरा नगरी की तीर्थयात्रा है और अधरोष्ठ अर्थात् नीचे का होंठ अत्यंत लाल है वही अरुणधर हैं (ललाई को धारण करता या करुणहृदय नामक बड़ा तीर्थ है) फिर श्रीरंगक्षेत्र नामकी तीर्थ भूमि तेरा सम्पूर्ण शरीर है अर्थात् शोभायमान रंगभूमि है और तेरे पुण्य चरित्र का कहां तक वर्णन करूं, संपूर्ण तीर्थ तेरे शरीर में ही बस रहे हैं, निर्जरपुरुष (देवता अथवा युवा) तेरी निरंतर सेवा करते हैं। अतः अब मुझे कोई अन्य तीर्थ की यात्रा करनी बाकी नहीं रही, इसलिए तुझे छोड़कर अन्य तीर्थयात्रा करने कहां जाऊं?

इस प्रकार कालिदास के चतुरतायुक्त और प्रेमभरे वचन सुनकर उस वणिक्पुत्री ने बड़े सत्कारपूर्वक आलिंगन किया।

इसके पश्चात् कालिदास स्वर्णकार की पुत्री के पास गया। उसके अनेक प्रकार के मधुरवचन कहकर क्रोध को निवारण करने के लिये निम्नलिखित श्लोक कहा–

'कान्ते रोमालिवल्ली तव तु समुदिता नाभिनिम्नालवाला
चित्रं वक्षोजहैमाचलयुगलफलापीक्ष्यत पुष्पशून्या ।
किंवान्तर्भूम्यमुष्याः पनसवदुदितं मूलदेशेऽस्ति पुष्पं
तद् द्रष्टुं मेऽतिवाञ्छेत्यभिवदति कवौ सा नतास्याऽहसंच्च ।।१।।'

अर्थात्–हे सुन्दरी! तेरी नाभिरूपी गम्भीर क्यारी में से उत्पन्न हुई नाभी से लेकर हृदयपर्यन्त बारीक पंक्तिरूप बेल की वृद्धि को प्राप्त होकर देखते–देखते थोड़े ही समय में उस बेल पर बड़े–बड़े दो फल (स्तन) प्रकट हुए हैं। वे फल मानों हिमालय के शिखर ही हैं, परन्तु ऐसी सुन्दर चमत्कारी बेल का फूल भी अवश्य होना चाहिये। वह फूल मालूम नहीं होता, यह बड़ा

आश्चर्य है। इस कारण बडहल के वृक्ष के समान बेल का प्रफुल्लित हुआ फूल मूलभूमि में ही है, उसको देखने की हमारी इच्छा है, इस प्रकार शृंगार रस सहित प्रेमपूरित कालिदास के मृदु वचनों को सुनकर मुख को नीचे करके अत्यंत आनंदपूर्वक उस स्वर्णकार की कन्या ने कालिदास के सामने आत्मसमर्पण कर दिया।

पश्चात् कालिदास चौथी राजकुमारीके पास जाकर अनेक हास्यविनोद करके उसको प्रसन्न करने के लिये नीचे लिखे अनुसार श्लोक बोला—

'पद्मेन्दीवरकुन्दचम्पकजपाजातीषु जातस्पृहं
क्रीडाकाञ्चनशैलतुङ्गशिखरारोहावरोहालसम् ।
मार्गप्रस्खलितं तथापि विषमे मग्नं सरोमण्डले
दुःखादुद्धृतमङ्गनेऽत्र कदलीमूले मनो मूर्च्छितम् ।।१।।'

अर्थात्—हे प्राणवल्लभ! एक हमारी प्राणों से भी प्यारी और चञ्चल मनरूपी वस्तु देखते—देखते तेरे शरीररूपी महा अरण्य में खो गयी है, इसलिए उसकी अत्यंत खोज करने पर पता लगा है कि वह इस प्रफुल्लित तुम्हारे मुखरूपी वन के द्वार पर जाकर अटक गयी है, फिर बहुत देर टक्कर खाकर पहले तो उसने तेरे मुखरूपी कमल में प्रवेश किया। पश्चात् नेत्ररूपी नीले कमल में प्रवेश किया, फिर दंतरूपी कुंद की कलियों में प्रवेश किया पश्चात् नासिकारूपी चम्पा की कली में प्रवेश किया, फिर जवा के पुष्परूपी लाल ओष्ठों में प्रवेश किया, तदनंतर चमेली के फूल अर्थात् तेरी हास्य जनक कांति में प्रवेश किया। इस प्रकार तेरे शरीररूपी वन में बारंबार भ्रमण करके फिर वहां से आगे को चली तो वह इसी वन में बड़े—बड़े उत्तुंग सुवर्ण के पर्वतों के तेरे स्तनरूपी शिखरों पर बारंबार चढ़ने—उतरने से थक गयी। फिर धीरे—धीरे वहां से नीचे—ऊंचे बिकट मार्ग में तेरे उदर की त्रिवली भाग के तटपर इस मन रूपी वस्तु ने बहुत सी ठोकर खाई, फिर वहां से नीचे उतरकर देखा तो एक सुन्दर गम्भीर कुण्ड (नाभी) देखकर उसमें स्नान करने के लिये घुस गयी। पश्चात् उसमें डूबते—डूबते बड़े जोर से निकलकर आगे चली, फिर वहां कदली के दो स्तम्भों के बीच में जाकर ऐसी टक्कर खायी कि आजतक भी नहीं निकल सकी। ऐसे कालिदास के शृङ्गाररस पूरित रहस्य के वचन सुनकर राजकन्या अपने शरीर की सब सुध भूल गयी और वचनामृत में ही तल्लीन हो गयी। इस प्रकार के वार्तालाप में प्रेमपाश के मद में विह्वल हुई राजकन्या ने सोचा कि हमारा यह पति स्त्रियों के बीच में आसक्त होकर काम के उद्वेग से अंधा हो गया है।

इस प्रकार मन में सोचकर क्रोधान्वित होकर कालिदास को इतने जोर से

लात मारी कि कालिदास पृथ्वी पर गिर पड़ा। फिर सावधान होकर राजकन्या के सम्मुख दृष्टि करके निम्नलिखित श्लोक कहा–

'दासे कृतागसि भवत्युचित: प्रभूणां
पादप्रहार इति सुन्दरि नास्मि दूये।
उद्यत्कठोरपुलकांकितकण्टकाग्रै
र्यद्भिद्यते मृदुपदं ननु सा व्यथा मे ।।२।।'

अर्थात्–हे सुन्दरी! दास अपराध करे तो उसको घर की स्वामिनी लात मारकर निकाल दे, यह बात उचित ही है। अर्थात्–तू गृहेश्वरी है, क्योंकि तेरी सेवा करने में सावधान रहना पड़ता है। आज तेरी सेवा में किसी प्रकार की चूक हो जाने से तूने लात मारी, इसलिये इससे तो मेरे मन में कुछ भी दु:ख नहीं, किंतु प्रफुल्लित हुए तेरे अत्यन्त कोमल चरणकमल में मेरी छाती के कठोर रोमांच चुभने से अत्यन्त पीड़ा हुई है। इस पीड़ा का स्मरण करने से मुझे बड़ा खेद होता है। ऐसे अनेक प्रकार के मधुर वचनों से प्रसन्न करके कालिदास चारों स्त्रियों के साथ इच्छानुसार संसार का सुख भोगने लगा।

कला ४४
(भुक्कुण्ड ब्राह्मण का आख्यान)

एक दिन राजा भोज के नये महल में भुक्कुण्ड नाम का पंडित चोरी करने के लिये गया। वहां जाकर चोरी करते–करते इसके कान में एक शब्द सुनाई पड़ा, फिर उसने कान लगाकर सुना तो राजा भोज बारंबार इस निम्नलिखित अर्द्धश्लोक को पढ़ रहा था।

श्लोक० पूर्वार्द्ध–'गवाक्षमार्गप्रविभक्तचन्द्रिको
विराजते वक्षसि सुभ्रू ते शशी'।

अर्थात्–हे सुन्दरी! झरोखे में से सुवर्ण की कांति के समान पृथक्–पृथक् विभक्त हुआ चंद्रमा तेरे वक्षस्थल के ऊपर अत्यंत शोभायमान हो रहा है।

उसको सुनकर ब्राह्मण ने मन में विचार किया कि इस श्लोक का आधा उत्तरार्ध राजा को स्मरण नहीं रहा, इसीलिए वह बार–बार पूर्वार्द्ध बोलता है। मन में ऐसा विचार करके कवित्वशक्ति का बल सहन नहीं कर सका अर्थात् तत्काल उत्तरार्द्ध बोल उठा और चोरी कर रहा हूं, यह बात भूल गया–

श्लो० उ० अ–''प्रदत्तझम्प: स्तनसङ्गवाञ्छया
विदूरपातादिव खण्डतां गत: ।।१।।''

अर्थात्–हे राजेन्द्र! इस समय उत्पन्न हुई स्तनमंडल की अपूर्व शोभा को देखकर चंद्रमा अत्यन्त लज्जित होकर अपने मंडल को स्तनमण्डल के साथ

करने के लिये बड़े ऊंचे से झंपापात करके मानो स्तनों के ऊपर खण्ड–खण्ड होकर गिर पड़ा है, ऐसा विदित होता है।

इस प्रकार उस चोर का वाक्य सुनकर राजा ने भयभीत होकर चारों ओर देखकर सेवकों को बुलाया। सेवकों ने एक पुरुष को एक कोने में बैठा हुआ देखा। उसे पकड़कर उन्होंने उसे राजा के सम्मुख उपस्थित किया। इस विचित्र पुरुष को देखकर राजा ने अत्यन्त क्रोधित होकर पहरेदारों को आज्ञा दी कि, अभी इसे पहरे में बिठा दो। प्रातःकाल इसको दरबार में हाजिर करना। इतना कहकर राजा निद्रा में मग्न हो गया। प्रातःकाल राजा अपने नित्यनैमित्तिक कर्मों से निवृत्त होकर भोजन करके दरबार में गया। वहां जाकर मंत्री प्रधान सामंत आदि सभासदों के सम्मुख अनुचरों को आज्ञा दी कि रात्रि के समय महल में जो चोर पकड़ा है उसे इस समय दरबार में हाजिर करो। राजा की आज्ञानुसार तत्काल उसको लाकर उपस्थित किया गया उसने रात्रि में महल में घुसने का कारण बताकर निम्न श्लोक कहा–

'भट्टिर्नष्टो भारविश्चापि नष्टो भिक्षुर्नष्टो भीमसेनोऽपि नष्टः ।
भुक्कुण्डोहं भूपतिर्भोज राजभानां पंक्तावन्तकः संप्रविष्टः ।।२।।'

अर्थात्–हे राजन्! जिनके नाम में प्रथम भकार आता है, ऐसे भकरादि नाम वालों की पंक्ति का अन्त हो गया; क्योंकि भट्टि, भारवि, भिक्षु, भीमसेन ये सभी कवि नाश को प्राप्त हो गये और मेरा भुक्कुण्ड नाम है और तुम्हारा भूपति भोज नाम है, इसलिए ये दोनों भकार विद्यमान हैं, किंतु मुझे तो आपने फांसी की आज्ञा दी है, इसलिए इतना ही विचारना उचित है।

ब्राह्मण के इस प्रकार समय सूचकता से परिपूर्ण वचनों को सुनकर राजा को हंसी आ गयी। उस ब्राह्मण का अपराध क्षमा करके उसे विशेष धन प्रदान किया।

कला ४५

(मयूर और बाण कवि का आख्यान)

राजा भोज की सभा में मयूर और बाण प्रसिद्ध पंडित थे। दोनो परस्पर साले–बहनोई थे। राजा भोज इनकी विशेष प्रतिष्ठा करता था। एक बार मयूर पंडित किसी कार्य के लिये अपनी बहन के घर गया। वहां अधिक रात्रि होने के कारण द्वार बंद हो गया। बाहर ही सो रहा। परंतु बहन और बहनोई की सारी एकाग्र चित्त से श्रवण करता रहा। उस दिन बाण कवि की स्त्री किसी कारण से बाण कवि से विशेष रुष्ट हो गयी थी, जिससे बाण कवि कामांध होकर अनेक प्रकार से उससे प्रार्थना कर रहे थे। किन्तु वह किसी

प्रकार से भी प्रसन्न नहीं हो रही थी। यों ही सम्पूर्ण रात्रि व्यतीत हो गयी और प्रातःकाल का समय हो गया। तब भी उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ। उस समय बाण कवि ने अपनी स्त्री से यह श्लोक बोला–

श्लोक० च०–"गतप्राया रात्रिः कृशतनुशशी शीर्यत इव
प्रदीपोयं निद्रावशमुपगतो घूर्णित इव ।
प्रणामान्तो मानस्त्यजसि न तथापि क्रुधमहो--"

अर्थात्–सम्पूर्ण रात्रि व्यतीत हो गयी और चन्द्रमा क्षीण होकर अस्त हो गया तथा यह दीपक भी मानो निद्रा के वश होकर झूमतासा दीखता है और स्त्रियों को मान रखने की जो अवधि है, अर्थात्–जब स्त्री को पति प्रणाम करे तो स्त्री को मान तत्काल छोड़ देना चाहिये, वह प्रणाम मेरे बारम्बार करने पर भी तूने अभी तक इस क्रोध का त्याग नहीं किया, बड़ा आश्चर्य है। इन तीन पादों को बाण कवि बारबार कह रहा था कि इन पदों को सुनकर मयूर कवि से अपनी कविता का बल न रोका गया, झट निम्नलिखित श्लोक का चौथा पाद बोल उठाः–

"कुचप्रत्यासत्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम् ।।१।।"

अर्थात्–हे अत्यन्त क्रोधवाली! तेरे अत्यन्त कठिन स्तनों के संसर्ग से तेरा हृदय भी इतना कठोर हो गया है कि अब तक बार बार विनती करनेपर भी कोमल नहीं हुआ।

इस प्रकार भाई के मुख से वचन सुनकर वह अत्यन्त क्रोधपूर्वक लज्जा को प्राप्त हुई और उसी समय कहा कि–

शाप दिया कि 'जा तू कुष्ठरोगी हो जा'। इस प्रकार उस पतिव्रता के शाप से मयूर पंडित कोढ़ी हो गया।

प्रातःकाल होने पर कोढ़ के व्रणों पर राख छिड़कर राजा भोज की सभा में गया। तब उसे देखकर बाण पंडित मोर की मधुर वाणी के समान मागधी भाषा में श्लोक बोला, उसे सुनकर राजा भोज लज्जित होकर मयूर की ओर देखने लगा। तब मयूर वहां से तत्काल उठकर नगर के बाहर जाकर सूर्य की आराधना करने लगा। मयूर कवि ने 'सूर्यशतक' नामक उत्तम सूर्यदेव का स्तवन बनाया उसे बार–बार पढ़कर सूर्यदेव की स्तुति करने से उसका कुष्ठरोग बिलकुल नष्ट होकर शरीर सर्वांग सुन्दर हो गया।

दूसरे दिन अगर चन्दनादिका शरीर पर लेप करके और विविध प्रकार के वस्त्रालंकारों को धारण करके मयूर कवि सभा में गया, इसको देखकर राजा भोज ने बाण पंडित की ओर देखा, तब बाण पंडित ने कहा कि सूर्यदेव इस पर प्रसन्न हो गये हैं, इसलिए शरीर कुष्ठरहित हो गया। बाण के इस वचन को

सुनकर मयूर पंडित कहने लगा कि जो देवताओं की आराधना करने से ऐसा फल होता है, तो तू भी कोई चमत्कार दिखला तब बाण पंडित बोला–जो मनुष्य रोगरहित हैं, उन्हें वैद्य से क्या प्रयोजन? तथापि तेरे वचनानुसार कुछ चमत्कार दिखलाऊंगा, तू मेरे हाथ पांव सब काटकर खंड–खंड कर दे, मैं अभी भवानीदेवी को केवल छठे श्लोक के एक शब्द से प्रसन्न करके अपना संपूर्ण शरीर सर्वांग सुन्दर कर दूंगा।

तब मयूर कवि ने उसके समस्त अंग अलग कर दिये। बाण कवि ने पालकी में बैठकर देवी के मंदिर में जाकर अनेक प्रकार का उसका स्तवन किया और छठे श्लोक के अंत के शब्द को पढ़ते ही उसका शरीर भी पूर्ववत् नवयौवनयुक्त हो गया।

इस प्रकार इन दोनों पंडितों का अद्‌भुत चमत्कार देखकर राजा भोज बाण और मयूर कवि की एक मुख से प्रशंसा करने लगे और राजा भोज ने दोनों कवियों को अतुल द्रव्य देकर प्रसन्न किया।

कला ४६
(वररुचि का आख्यान)

एक बार धारानगरी में महासत्यवादी परमोदार और सर्वगुण सम्पन्न राजा भोज चौदह सौ पंडितों के बीच में सिंहासन पर बैठा था, इतने में बंगाल की ओर से भ्रमण करता हुआ, वेदशास्त्रसम्पन्न, परमप्रवीण, महादरिद्री और समस्त विद्याओं का पारगामी वररुचि नामक एक ब्राह्मण सभा में आया। वह मार्ग में कहीं से एक जामफल (अमरूद) और एक मिरच मांगकर ले आया था। इसलिये वह प्रथम इन दोनों वस्तुओं को राजा भोज के भेंट करके आशीर्वाद देकर राजा के सम्मुख बैठ गया। राजा ने उसकी ओर देखकर कि हे द्विजोत्तम! आजतक मेरे पास अनेक ब्राह्मण आये, परन्तु ये फल किसी ने भी भेंट नहीं किये, इसलिए पहिले इन फलों के नाम बताओ और इनमें शास्त्रोक्त रीति से कल्याणवाचक शब्द कहो। इस प्रकार राजा के वचन सुनकर वररुचि बोला कि–हे करुणासिंधो! इस फल को बहुबीजा अथवा जामफल कहते हैं। इसका अर्थ यही है कि–जो राजा कुलवन्त हो और धर्म की विशेष उन्नति करता हो,उसकी निर्मल कीर्ति इस बहुबीजे की सदृश सम्पूर्ण संसार में विस्तृत होती है। अतएव आप भी इस धर्मक्षेत्र को निरन्तर बोते हैं, इससे आपकी भी फलरूपी कीर्ति समस्त विश्व में व्याप्त होगी। इस प्रकार वररुचि ने जामफल का प्रयोजन कहकर राजा के मन का समाधान कर दिया।

फिर राजा मिर्च को हाथ में लेकर क्रोधभरी दृष्टि से उसकी ओर देखकर

बोला–महाराज! अब इस फल का भावार्थ कहिये, इस वस्तु को यहां लाने का क्या प्रयोजन है?

तब वररुचि बोला–हे नरेन्द्र! इस वस्तु को मिर्च कहते हैं। आपने इसको अशुभ और तुच्छ समझकर मेरी ओर कटाक्षदृष्टि से देखा, किन्तु इसका नाम ग्रहण करने में उत्तम है, वह आप स्वयं कह देंगे। हे पृथ्वीभूषण! यह अपने नाम को मिरची कहकर आपकी प्रार्थना करती है कि मुझसे सम्पूर्ण पदार्थ स्वादिष्ट होते हैं, इससे मुझ पर रुचिकर। इसको सुनकर राजा भोज समझ गया कि यह ब्राह्मण अत्यन्त चतुर है। फिर राजा ने पूछा कि हे विद्वद्वर्य! आपका यहां आना कैसे हुआ?

ब्राह्मण बोला–हे राजेन्द्र! आप सरीखे गोब्राह्मण प्रतिपालक राजा के दर्शन करने के लिये बंगाल से आया हूं। आपका दर्शन करने से कृतकृत्य और शंकररूप हुआ,किन्तु पूर्णतामें कुछ कसर रह गयी है, उसे आप पूर्ण करेंगे।

"शूली जातःकदशनवशाद्भैक्ष्ययोगात्कपाली
वस्त्राभावाद्विगतवसनः स्नेहशून्यो जटावान् ।
इत्थं राजंस्तव परिचयादीश्वरत्वं मयाप्तं
नाद्यापि त्वं मम नरपते ह्यर्द्धचन्द्रं ददासि ।।१।।"

अर्थात्–शंकर–शूली, कपाली, दिगम्बर जटाधारी एवं अर्धचंद्र इतने चिह्नों से चिह्नित हैं। इनमें से सिवाय अर्धचन्द्र के शेष चिह्न मुझे प्राप्त हुए हैं। इससे उनको आपसे कहता हूं! मैंने मिष्ठान्न भक्षण स्वप्न में भी नहीं किया। इससे शूली अर्थात्–शूलरोगी हूं, घर में एक दिन का भी अन्न न होने से भिक्षाटन करने जाता हूं। पर भिक्षा मांगने के लिये धातु का पात्र न होने से नारियल के कपाल में मांगकर लाता हूं, इस कारण कपाली तथा ओढ़ने के लिये और पहनने के लिये जीर्ण वस्त्र भी नहीं, इस कारण मुझे दिगम्बर का पद प्राप्त हुआ है एवं केशों में तेल आदि के न डालने से वह सूखे और जटाओं के समान लम्बे हो गये हैं, इस कारण मैं जटावान् हूं। इसी प्रकार आपके परिचय से मुझे ईश्वरता प्राप्त हुई है। किन्तु एक वस्तु की न्यूनता रह गयी है, वह यह है कि अर्धचन्द्रलक्षण अर्थात् अंगूठे और तर्जनी से गचंडि (घेंचा) मारकर निकाल दोगे, तो मुझे पूर्णरीति से ईश्वरता प्राप्त हो जायेगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

इस प्रकार राजा भोज वररुचि का संभाषण सुनकर तथा उसका धैर्य और इतनी चतुरता देखकर आश्चर्य में पड़ गया। फिर उसको बहुत–सा धन और अनेक प्रकार के वस्त्र आभूषण देकर सन्तुष्ट किया।

कला ४७

(माघ पण्डित)

जिस प्रकार राजा भोज की विद्वत्ता, दानशक्ति और गुणज्ञता, जगत् में विख्यात थी, उसी प्रकार माघ पंडित की भी अलौकिक विद्वत्ता, असाधारण दानशक्ति संसार में प्रसिद्ध थी, किन्तु किसी विषय में माघ पंडित राजा भोज से भी अधिक उदार था। माघ पंडित के द्वार पर कदापि कोई याचक विमुख होकर नहीं जाता था। माघ पंडित की जब संसार में इतनी कीर्ति फैली, तब राजा भोज के मन में इच्छा हुई कि अवश्य माघ पंडित से मिलना चाहिये। राजा भोज ने कई प्रतिष्ठित मनुष्यों को श्रीमालपुर भेजकर बड़े आदरपूर्वक माघ पंडित को धारानगरी में बुलाया। धारानगरी के निकट आने पर राजा भोज बड़े समारोह के साथ पंडितजी की अगवानी करने के लिये गया। पश्चात् अनेक प्रकार के वादित्र, गीत आदि के साथ पंडितजी ने नगर में प्रवेश किया। पंडितजी के सम्मानार्थ बहुत से कर्मचारी नियत किये और उनके निवास के लिये विविध प्रकार के वस्त्रों से वेष्टित कोमल शय्या और भोजनादि के लिये अनेक प्रकार के षड्रसान्वित भोजन बनवाये। इस तरह धारानगरी में निवास करते हुए माघ कवि को अनेक मास व्यतीत हो गये। पश्चात् एक दिन प्रातःकाल वादित्रों के मांगलिक शब्द सुनकर माघ पंडित जागृत हुआ और राजा के पास जाकर घर जाने की इच्छा प्रकट की। किन्तु राजा ने किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया। बहुत हठ करने पर राजा ने कहा–जो इच्छा आपकी। माघ कवि जब चलने को उद्यत हुआ तब भी राजा भोज ने बहुत समझाया, किन्तु उसने रहना स्वीकार नहीं किया। माघ पंडित को राजा बहुत दूर तक पहुंजाने गया और चलते समय माघ ने राजा से यह वचन ले लिया कि आप हमारे घर अवश्य आयें। इस बात को स्वीकार करके राजा अपने घर वापस आया। फिर बहुत दिनों बाद राजा भोज माघ पंडित का ऐश्वर्य देखने के लिये श्रीमालनगर को गया। माघ पंडित ने राजा को अत्यन्त सत्कारपूर्वक अपने घर में ठहराया और राजकर्मचारियों तथा समस्त सेना को यथोचित स्थान में ठहराया। उनके भोजन आदि का भी उत्तम प्रबन्ध किया। राजा की समस्त सेना एक छोटे से स्थान में समा गयी। राजा ने माघ पण्डित का स्वर्णमय और रत्नजटित भवन देखकर मन में बड़ा आश्चर्य किया। उस भवन में एक ओर पद्मराग मणियों से व्याप्त और एक ओर मरकत मणियों से विभूषित पृथ्वी थी। मरकत मणियों से व्याप्त भूमि को देखकर राजा को जल

में सिवार का भ्रम हुआ, राजा उसको जल समझकर वस्त्र समेटने लगा, तब सेवकों ने सब बात ठीक–ठीक बतायी, उसे सुनकर राजा अत्यन्त लज्जित हुआ। तदनंतर भोजन के समय अनेक प्रकार के व्यंजन शाक, मिष्ठान्न, पक्वान्न आदि विविध सामग्री राजा के सम्मुख रखी गयी, प्रसन्नतापूर्वक भोजन करके चंद्रशाला में गया। वहां अनेक प्रकार के आश्चर्यजनक पदार्थ देखे। फिर शीतल मंद सुगन्ध पंवन के चलने पर शयनमंदिर में जाकर सो गया। प्रातःकाल शंखनाद की ध्वनि सुनकर राजा जागृत हुआ और माघ पंडित बारंबार राजा के पास जाकर उसके मन की प्रसन्नता पूछने लगा। इस प्रकार आनन्दपूर्वक कितने ही दिन सहज भाव से बीत गये। फिर कुछ समय बाद राजा भोज ने माघ पंडित से स्वदेश जाने की आज्ञा मांगी, तब माघ पंडित ने प्रसन्न होकर अपना नया रचा हुआ 'भोज स्वामिप्रसाद' नामक ग्रन्थ भोज को भेंट किया। उसे लेकर राजा भोज मालवे की ओर बिदा हुआ।

अनेक ज्योतिर्विद् विद्वानों ने माघपंडित की जन्मपत्री में इस प्रकार लिखा था कि–'माघ पंडित प्रथम अवस्था में अतुल समृद्धि के प्राप्त होने से अत्यन्त पराक्रमी और जगत् में प्रसिद्ध होगा और उत्तर अवस्था में सम्पूर्ण समृद्धि के घट जाने से एक अतिशय दरिद्र अवस्था को प्राप्त होगा। फिर वृद्धावस्था में एक साथ उसके पादशोथ रोग उत्पन्न होगा और उसी रोग से इस अद्वितीय पुरुष की मृत्यु होगी।' ठीक उसी प्रकार हुआ भी। माघ पंडित के पिता इसे पढ़कर अत्यन्त दुःखी हो गये थे। माघ की सौ वर्ष की आयु निश्चित समझकर सौ वर्ष के छत्तीस हजार दिनों के हिसाब से हीरे पद्मरागादि से जड़े हुए सुवर्ण के छत्तीस हजार बहुमूल्य हार बनावाकर उन्होंने नवीन भंडार में रखवा दिये थे।

तथा इनके अलावा और भी बहुत सी सम्पति माघ पंडित को अपने कुलानुसार उत्तम शिक्षा दिलाकर पञ्चत्व को प्राप्त हुए थे। पश्चात् उस कुबेर के वे स्वयं समान माघ पंडित ने अपनी सम्पूर्ण समृद्धि पंडितों को और याचकों को थोड़े ही समय में दान कर दी।

माघ पंडित ने 'शिशुपालवध' नामक महाकाव्य रचकर पंडितों के मन में चमत्कार उत्पन्न किया तथा इसके अलावा भी बहुत से अद्‌भुत ग्रन्थ रचकर संसार में अपूर्व ख्याति प्राप्त की।

फिर पुण्य क्षीण होने पर माघ कवि दरिद्री हो गया और अपने देश में रहना उत्तम न समझकर धारानगरी में जाकर समय व्यतीत करने लगा।

फिर कुछ समय के पश्चात् अपने देश में लौटकर एक नवीन ग्रंथ रचकर, अपनी स्त्री को देकर राजा भोज के पास द्रव्य लेने के लिये भेजा। राजा भोज

माघ पंडित की स्त्री की दुर्दशा देखकर अत्यन्त आश्चर्य में भर उठा। किंतु करे क्या? 'कर्मणो गहना गतिः' अर्थात् कर्म की गहन गति है। पश्चात् पुस्तक का पृष्ठ उघाड़ कर देखा तो उसमें निम्नलिखित श्लोक पर दृष्टि पड़ी।

"कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्च-
क्रवाकः । उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं,हतविधिलसितानां हा
विचित्रो विपाकः ।।१।।"

अर्थात्—जब दैव विपरीत होता है, तब प्रायः सम्पूर्ण कार्य नष्ट हो जाते हैं। जैसे सूर्य उदय होता है तब चन्द्रमा अस्त होता है तथा कुमुदवन (कुमुदिनी—बबूले) शोभाहीन होकर बंद हो जाते हैं और कमलवन विकसित होता है तथा उलूकपक्षी की दिन में दृष्टि बंद होने से वह देखने को असमर्थ हो जाता है और चक्रवाक पक्षी को स्त्री विरह के दूर हो जाने के कारण अत्यन्त आनन्द मिलता है। इस काव्य का अर्थ विचार कर राजा भोज बोला कि यदि इस काव्य के बदले में मैं सम्पूर्ण पृथ्वी भी दे दूं तो भी थोड़ी है, किन्तु इस समय केवल यहां एक अर्थ की पुष्टि करने वाला 'हा' शब्द का मूल्य एक लक्ष रुपया देता हूं। इस प्रकार एक लक्ष रुपया देकर उसे विदा किया। मार्ग में याचक लोगों ने उसे माघ पंडित की स्त्री जानकर उससे याचना की और उसने पूरा एक लक्ष रुपया याचकों को दे दिया। फिर घर पहुंचकर सम्पूर्ण वृत्तान्त पति को सुनाया। उसे सुनकर माघ कवि बोला कि स्त्री! तू मेरी मूर्तिमती कीर्ति है। वे परस्पर वार्त्तालाप कर रहे थे कि इतने में याचकों का समूह माघ पंडित के द्वार पर आकर दीन स्वर से मांगने लगा। याचकों के लिये अपने घर कुछ देने योग्य न देखकर मन में अत्यन्त दुःखी होकर माघ कवि ने नीचे लिखे अनुसार श्लोक कहा—

"अर्था न संति न च मुञ्चति मां दुराशा, दानाद्धि संकुचति दुर्ललितः
करो मे । याञ्चा च लाघवकरी स्ववधे च पापं, प्राणाः स्वयं व्रजत
किं परिदेवितेन ।।२।।"

अर्थात्—घर में द्रव्य नहीं रहा, जिससे दान देने में हाथ सकुचा गये, दूसरे से मांगने में लज्जा आती है, और आत्मघात करने से घोर पाप लगता है। अतःअब वृथा शोक करने से क्या प्रयोजन! इससे हे प्राण! तुम अपने आप चले जाओ।

पुनश्च—"दारिद्र्यानलसंतापः शांतः संतोषवारिणा ।
दीनाशाभङ्गजन्मा तु केनायमुपशाम्यतु ।।३।।"

अर्थात्—दरिद्रतारूपी अग्नि से हुआ संताप संतोषरूपी जल से शांत होता है, किंतु दीन लोगों की आशा को भंग करने से उत्पन्न हुआ संताप, किसी उपाय

से भी शांत नहीं हो सकता।

तथा च–"न भिक्षा दुर्भिक्षे पतितदुरवस्थाः कथमृणं,लभंते कर्माणि क्षितिपरिवृढान् कारयति कः । अदत्त्वापि ग्रासं ग्रहपतिरसावस्तमयते, क्व यामः किं कुर्मो गृहिणी गहनो जीवितविधिः ।।४।।

अर्थात्–इस दुर्भिक्ष में भिक्षा नहीं मिलती, किसी से ऋण भी नहीं मिल सकता, किसी के दास होकर भी रहना चाहें तो ब्राह्मण समझकर कोई दास भी नहीं रखेगा। इसलिए हे स्त्री! आज एक ग्रास की भी भिक्षा दिये बिना सूर्य अस्त होने जा रहा है। अब कहां जाऊं? और क्या करूं? अन्न के बिना जीना मुझे कठिन है।

अन्यच्च–"क्षुत्क्षामः पथिको मदीयभवनं पृच्छन् कुतोऽप्यागतस्तत्किं गेहिनि किंचिदस्ति यदयं भुङ्क्ते बुभुक्षातुरः । वाचास्तीत्यभिधाय नास्ति च पुनः प्रोक्ते विनैवाक्षरैः स्थूलस्थूलविलोललोचनजलैर्बा–ष्पाम्भसां बिन्दुभिः ।।५।।"

अर्थात्–क्षुधा से पीड़ित याचक लोग मेरा घर पूंछकर आये हैं, सो इनके भोजन के लिये घर में कुछ है? इस प्रकार माघ कवि के वचनों को सुनकर माघ कवि की स्त्री बोली कि–'हैं'।, किन्तु शब्दों के बिना नहीं ऐसा कहा, अर्थात् बड़े–बड़े नेत्रों से बड़े–बड़े आंसुओं के निकालने के सिवाय मुख से 'नहीं है' ऐसा न कहा, अर्थात् आंसुओं से ही नहीं' ऐसा कह दिया। फिर माघ ने कहा–

"व्रजत व्रजत प्राणा अर्थिनि व्यर्थतां गत । पश्चादपि हि गंतव्यं क्व सार्थः पुनरीदृशः ।।६।।"

अर्थात्–हे प्राण! याचक लोग निराश हो–होकर जाने लगे हैं, तुम भी इनके साथ क्यों नहीं चले जाते हो? क्योंकि फिर ऐसा साथ तुम्हें 'नहीं मिलेगा।' इस वाक्य का अन्तिम शब्द बोलते ही माघ कवि के प्राण प्रयाण कर गये।

प्रातःकाल होने पर राजा भोज ने माघ पंडित का समाचार लेने के लिये आदमी भेजे। उन्होंने वापस जाकर कहा कि महाराज अन्न के बिना माघ पंडित के प्राण निकल गये। यह सुनते ही राजा शोक में डूब गया। माघ कवि की जाति के वहां बहुत से ब्राह्मण और अनेक इष्ट मित्र उपस्थित थे, अपने सामने ही एक ऐसे अद्वितीय मनुष्य की दुर्दशा देखकर वहां के लोगों ने श्रीमालनगर का नाम 'भिल्लपाल' रख दिया।

कला ४८
(शंखचूडनामक कविका चरित्र)

एक बार राजा भोज हेमन्त ऋतु में रात्रि के समय नगर की हालत देखने के लिये घूम रहा था। तभी एक देवमंदिर की ओर से लम्बी और क्षीण सी आवाज आयी। राजा भोज ने चारों और घूमकर देखा, तो एक अत्यन्त दीन मनुष्य निम्नलिखित काव्य को बारंबार पढ़ रहा है।

"शीतनोद्‌घुषितस्य माषफलवच्चिन्तार्णवे मज्जतः शान्तोऽग्निः
स्फुटिताधरस्य धमतः क्षुत्क्षामकुक्षेर्मम । निद्रा क्वाप्यवमानितेव
दयिता संत्यज्य दूरं गता सत्पात्रप्रतिपादितेव कमला न क्षीयते
शर्वरी ।।१।।"

अर्थात्–शीत के सहन करते–करते अति पीड़ित का शरीर उड़द के समान श्याम हो गया है और कुंटुम्ब के पोषण करने की चिंतारूपी समुद्र में बारंबार मुसलस्नान करने से यह खरखरा हो गया हैं। इतना ही नहीं, अत्यंत क्षुधा के लगने से कृश हुआ और फटे हुए जठरमंडल में से महाकष्ट से श्वास निकलकर शांत हो गयी, अग्नि के बारंबार धौंकते समय शीत के फटे हुए होठों में से बारंबार निकालते हुए शब्द सुनकर अपमान को प्राप्त हुई स्त्री के समान निद्रा मेरा त्याग करके अत्यंत दूर चली गयी है और सत्पात्र द्वारा प्रदान की हुई लक्ष्मी–सी यह शीतकाल की रात्रि बढ़ती जा रही है, घटती ही नहीं।

इस काव्य को सुनकर राजा वापस अपने मंदिर में चला गया। प्रातःकाल उस ब्राह्मण को सभा में बुलाकर राजा ने पूछा कि तुमने पिछली रात्रि इतना घोर शीत कैसे सहन किया? और मैं तुम्हारे सत्पात्र को प्रदान की हुई लक्ष्मी के दृष्टांतादि से अत्यंत प्रसन्न हुआ हूं। इस प्रकार राजा के वचन सुनकर ब्राह्मण बोला कि हे राजन्! मुझे तीन बल अधिक हैं। उन तीन बलों से शीत को जीतता हूं। राजा ने पूछा कि तुम्हारे तीन बल कौन–कौनसे हैं? उनको स्पष्ट बताओ।

'रात्रौ जानुर्दिवा भानुः कृशानुः संध्ययोर्द्वयोः।
राजञ्छीतं मया नीतं जानुभानुकृशानुभिः ।।२।।'

अर्थात्–हे राजन्! रात्रि में तो घुटनों के बल से अर्थात् घुटनों को पेट में कौन–कर शीत का निर्गमन करता हूं, दिन में सूर्य की धूप शरीर पर ओढ़कर व्यतीत करता हूं और सन्ध्या समय तथा प्रातःकाल अग्नि के बल शीत को जीतता हूं, इन तीन से बलों मैं शीत का निर्गमन करता हूं।

इस प्रकार राजा ने उसका श्लोक सुनकर बड़े हर्षपूर्वक उसे लक्ष रुपये देकर विदा किया।

इति भोज और कालिदास समाप्त

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष :- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS

